शोधादर्श

६२

श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, रायगंज, अयोध्या

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

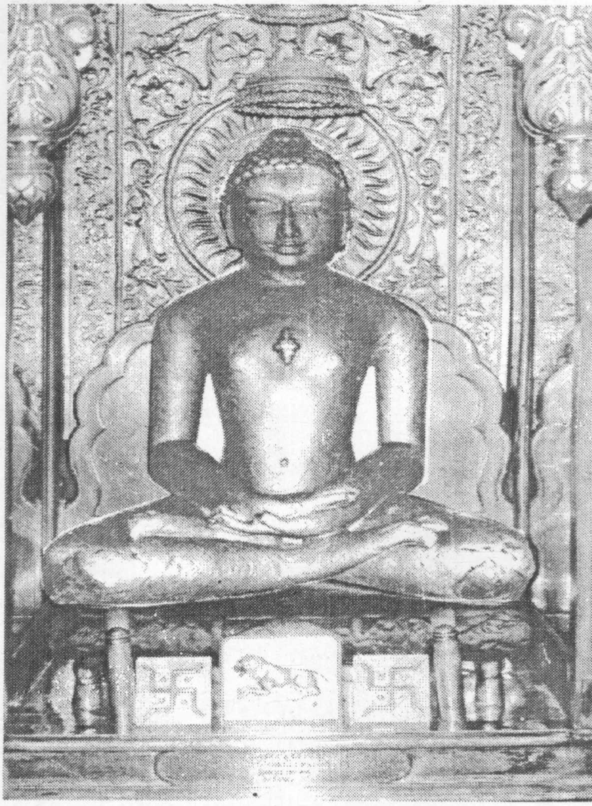

भगवान महावीर स्वामी
श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी

जिनेशे विश्वनाथाय ह्यनन्तगुणसिन्धवे।
धर्मचक्रभृते मूर्ध्ना श्रीवीरस्वामिने नमः।।

– श्री सकलकीर्ति विरचित ***श्री वीरवर्धमानचरितम्***

समस्त विश्व के नाथ, अनन्त गुणों के सागर और धर्मचक्र के धारक ऐसे जिनराज श्री वीरस्वामी को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक : (स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
सलाहकार : डॉ. शशि कान्त
सम्पादक : श्री रमा कान्त जैन
सह–सम्पादक : श्री नलिन कान्त जैन
श्री सन्दीप कान्त जैन
श्री अंशु जैन 'अमर'

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ- २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श -६२

वीर निर्वाण संवत् २५३३ जुलाई २००७ ई.

विषय क्रम

१.	गुरुगुण कीर्तन : डॉ. हीरालाल जैन	श्री रमा कान्त जैन	१
२.	पञ्चाध्यायी का कर्तृत्व	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	४
३.	वाग्देवी के अवतरण का पर्व-श्रुत पंचमी	श्री अजित प्रसाद जैन	११
४.	सम्पादकीय : सन्त समागम	श्री रमा कान्त जैन	१५
५.	बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के प्रभावक जैन सन्त	डॉ. शशि कान्त	१७
६.	सर्वोदय तीर्थ के नाम पर	श्री जमनालाल जैन	२०
७.	जैन, बौद्ध एवं हिन्दू धर्म ग्रन्थों में अयोध्या	डॉ. (कु.) मालती जैन	२६
८.	भिक्षा-विचार : जैन तथा वैदिक दृष्टि से	डॉ. अनीता बोथरा	३२
९.	केवल बसन बदलने भर से	डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया	४३
१०.	श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार जैन आगमों की वाचना	श्री भगवान भरोसे जैन	४४
११.	अपनी बोली और अपनी जमीन	श्री सुरेश जैन 'सरल'	४६
१२.	Jains	बेबी पलक जैन	४७
१३.	नैतिकता विहीन धार्मिकता-एक खतरनाक स्थिति	डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा	४८

१४. धांकड़ जाति — श्री सत्येन्द्र जैन — ५०
१५. वीर शासन जयन्ती — श्री सुरेश चन्द्र जैन बारौलिया — ५१
१६. पारदर्शी-छन्द — ॐ पारदर्शी — ५२
१७. प्रश्न ये हल आज करना चाहता हूँ — डॉ. गणेशदत्त सारस्वत — ५३
१८. जैन समाज में व्रत एवं त्योहारों का महत्व — श्रीमती कुसुम सोगानी — ५४
१९. व्यापक चेतन खोज रहा हूँ — डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' — ६१
२०. तीर्थक्षेत्रों पर सुरक्षा का अभाव — श्रीमती सितारा जैन — ६२
२१. सामयिक परिदृश्यः क्षणिकाएं — श्री रमा कान्त जैन — ६३
२२. चिन्तन कण — डॉ. परमानन्द जड़िया — ६४
२३. परिचर्चाः भावना का व्यवहार नय और निश्चय नय स्वरूप — श्री मनोहर मारवडकर — ६५
२४. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., का प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००६-२००७ — श्री रमा कान्त जैन — ६७
२५. साहित्य-सत्कार :
Ancient Republics of Bharat Preaching Salvation, डॉ. शशि कान्त — ७३
प्रवचनसार भाषाकवित्त; अहिंसा और विश्वशान्ति;
जैन धर्म-एक झलक; तथा विविध साहित्य — श्री रमा कान्त जैन — ७३
२६. समाचार विमर्श : — श्री रमा कान्त जैन — ७७
श्री पद्मावती माता को २००७ फुट की चुनरी
एन. डी. कुमार स्वामी पर बरसे मुनि तरुणसागर
२७. समाचार विविधा : — ७८
वैशाली में विद्वद् संगोष्ठी; आचार्य हेमचन्द्रसूरि व्याख्यानमाला-तृतीय कड़ी;
डॉ. ज्योति प्रसाद जैन स्मृति-गोष्ठी'; ग्रन्थ लोकार्पण;
श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस' ;
विशेष डाक लिफाफा; दिगम्बर जैन मंदिरों की डायरेक्ट्री;
श्री अजित प्रसाद जैन की द्वितीय पुण्यतिथि
२८. अभिनन्दन — ८२
२९. शोक संवेदन — ८४
३०. आभार — ८४
३१. पाठकों के पत्र — ८५

डॉ. हीरालाल जैन

जैन जगत के रहे वे, अप्रतिम हीरा-लाल।
प्राचीन ग्रन्थों में दिया, नवजीवन रस डाल।।

लम्बा कद, गौर वर्ण, पानीदार आँखें और चेहरे पर सदाबहार मुस्कराहट यह एक शब्द चित्र है आकर्षक व्यक्तित्व के धनी डॉ. हीरालाल जी का। अपनी विलक्षण प्रतिभा और शालीन मृदु व्यवहार के कारण वह साथी प्राध्यापकों और छात्रों में प्रिय रहे। उनका जन्म १८ सितम्बर, १८९८ ई. को मध्य प्रदेश के नरसिंहपुरा जिले के अन्तर्गत गांगई ग्राम में हुआ था। उनके पिताश्री का नाम बालचन्द मोदी और माताश्री का नाम झुतरोबाई था। वह अपने माता-पिता की तीसरी सन्तान थे। हीरालाल जी की शिक्षा का श्री गणेश गांगई ग्राम के प्राइमरी स्कूल में हुआ। उक्त स्कूल की पढ़ाई पूरी होने पर उनके पिता ने उन्हें पैतृक व्यवसाय में लगाना चाहा, किन्तु हीरालाल जी के मन में आगे पढ़ने की तीव्र लालसा थी। अतः उन्हें पांच मील दूर गाडरवाला के मिडिल स्कूल में भर्ती करा दिया गया। वहाँ से वह नरसिंहपुर हाई स्कूल की शिक्षा के लिये गये। वह परीक्षा उत्तीर्ण करने पर उन्होंने जबलपुर के राबर्टसन कालेज में प्रवेश लिया और सन् १९२० ई. में बी. ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। बी.ए. परीक्षा में संस्कृत में विशेष योग्यता प्राप्त करने पर उन्हें 'कैलाशचन्द्र दत्त मेमोरियल मेडल' तथा स्नातकोत्तर अध्ययन हेतु सरकारी छात्रवृत्ति प्रदान की गई। तदनन्तर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सन् १९२२ ई. में एम.ए. तथा एल-एल.बी. परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। एम.ए. परीक्षा में संस्कृत में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने के फलस्वरूप यू.पी. सरकार ने उन्हें वर्ष १९२२ से १९२५ तक तीन वर्ष के लिये शोध छात्रवृत्ति प्रदान की और यह अवधि उन्होंने जैन साहित्य एवं इतिहास का विशेष अध्ययन करने में व्यतीत की।

छात्रावस्था में ही मात्र १६ वर्ष की वय में सन् १९१४ ई. में उनका विवाह सोना बाई से हो गया था। उनसे उन्हें एक पुत्र (प्रो. प्रफुल्ल कुमार मोदी) और पांच पुत्रियां हुईं। सन् १९३८ ई. में पत्नी का निधन हो गया।

जुलाई १९२५ ई. में वह अमरावती के किंग एडवर्ड कालेज में असिस्टेन्ट प्रोफेसर नियुक्त हुए और जुलाई १९४४ ई. में नागपुर के मॉरिस कालेज में प्रोफेसर होकर चले गये। वहां कुछ समय वह प्रिंसिपल के पद पर भी कार्यरत रहे और सन्

१९५४ ई. में वह शासकीय शिक्षा सेवा से सेवानिवृत्त हो गये। सन् १९४४ ई. में उन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय से अपभ्रंश साहित्य के अध्ययन पर डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। दिसम्बर १९५५ ई. से नवम्बर १९६० ई. तक वह मुजफ्फरपुर (बिहार) में प्राकृत एवं जैन विद्या के स्नातकोत्तर शोध संस्थान में निदेशक के पद पर कार्यरत रहे। तदनन्तर १९६१ से जबलपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग के प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष के पद पर कार्य कर वह अन्ततः १९६८ ई. में सेवामुक्त हुए। स्वास्थ्य प्रतिकूलता और पूर्ण विश्राम हेतु चिकित्सकीय परामर्श के बावजूद वह अन्त तक अधिक से अधिक साहित्य सेवा में संलग्न रहे जिसका परिणाम यह हुआ कि १३ मार्च, १९७३ ई. को मात्र ७४ वर्ष की वय में संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और जैन वाङ्मय के इस उद्‌भट विद्वान को मृत्यु ने अपनी गोद में ले लिया।

सन् १९२३ ई. में हीरालाल जी ने कारंजा के तीन शास्त्र भण्डारों का अवलोकन कर वहां उपलब्ध संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषा के प्राचीन ग्रन्थों की सूची तैयार की। वहां उपलब्ध कुछ ग्रन्थों का नाम पहले सुना भी नहीं गया था। **"संस्कृत एण्ड प्राकृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन सी.पी. एण्ड बरार"** नामक इस सूची का प्रकाशन सन् १९२६ ई. में तत्कालीन मध्य प्रदेश सरकार द्वारा किया गया। इस सूची ने भारत ही नहीं भारत बाह्य विद्वानों का ध्यान भी इन ग्रन्थों की ओर आकर्षित किया।

इसी समय के लगभग इन्दौर के बैरिस्टर जुगमंदर लाल जैनी नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती कृत **'गोम्मटसार'** का अंग्रेजी में अनुवाद कर रहे थे। उन्हें इस कार्य में सहायता हेतु एक प्राकृतविद् की आवश्यकता थी। संयोग से हीरालाल जी से उनका परिचय हुआ और हीरालालजी ने उन्हें उक्त ग्रन्थ के अनुवाद में उन्मुक्त सहयोग प्रदान किया।

पं. नाथूराम प्रेमी की प्रेरणा से उन्होंने सन् १९२५ ई. में श्रवणबेलगोल और आसपास के क्षेत्र के दिगम्बर जैन सम्प्रदाय सम्बन्धी ५०० शिलालेखों के संकलन-संपादन का कार्य हाथ में लिया और वह संकलन १९२८ ई में प्रेमी जी द्वारा माणिकचन्द्र-दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला से **'जैन शिलालेख संग्रह-प्रथम भाग'** के रूप में प्रकाशित हुआ।

सन् १९२५ ई. में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के जर्नल में प्रकाशित अनेक प्राकृत ग्रन्थों की हीरालाल जी ने भूमिका लिखी। अपभ्रंश भाषा में निबद्ध **जसहरचरिउ, नयकुमारचरिउ, करकण्डुचरिउ, साव्यधम्म दोहा, पाहुड दोहा, मयणपराजय चरिउ, वीर जिणिन्द चरिउ**, प्राकृत भाषा में रचित **सुदर्शन चरिउ** तथा संस्कृत में प्रणीत

सुगंधदशमी कथा, सुदर्शनचरित और **श्रीचन्द्रकृत कथा कोश** के सम्पादन का श्रेय उन्हें रहा। सम्पादन के क्षेत्र में उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान दुर्लभ महाकाय ग्रन्थ **षट्खण्डागम** का **धवला टीका** सहित १६ भागों में प्रकाशन है जो सन् १६३६ ई. से सन् १६५५ ई. की अवधि में पं. हीरालाल शास्त्री और पं. फूलचन्द्र शास्त्री के सहयोग से सम्पन्न हुआ। मुम्बई की माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर की जीवराज जैन ग्रन्थमाला और भारतीय ज्ञानपीठ की मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के सम्पादन से भी वह जुड़े रहे।

इतिहास, साहित्य और दर्शन विषयक अनेक विद्वत्तापूर्ण लेखों के प्रणेता डॉ. हीरालाल जी ने **सिद्धान्त समीक्षा, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, जैन धर्म साहित्य और सिद्धान्त** तथा **प्रागैतिहासिक जैन परम्परा** नामक कृतियों का प्रणयन भी किया था। उन्होंने अपने परिवार 'मोदी वंश' का छन्दबद्ध इतिहास भी लिखा था। उनकी कृति **भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान** का मराठी, कन्नड़ और अंग्रेजी भाषा में अनुवाद भी हो चुका है। और उनके द्वारा सम्पादित **वीर जिणिदं चरिउ** एवं **जिनवाणी** तथा उनके द्वारा प्रणीत **प्रागैतिहासिक जैन परम्परा** का प्रकाशन उनके मरणोपरान्त हुआ है।

प्राच्य भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित डॉ. हीरालाल जी अनेक साहित्यिक-सामाजिक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे और समय-समय पर समादृत होते रहे। सन् १६३८ ई. में खण्डवा में हुए दिगम्बर जैन परिषद के अधिवेशन की उन्होंने अध्यक्षता की थी। ऑल इण्डिया ओरिएन्टल कान्फ्रेन्स के प्राकृत एवं जैन तत्त्व ज्ञान विभाग के वह तीन बार-१६४४ ई. में वाराणसी में, १६६६ ई. में अलीगढ़ में तथा १६७० ई. में जाधवपुर में-अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

प्राचीन जैन ग्रन्थों में अपने सम्पादन से नवप्राण संचार करने वाले और उन्हें प्रकाश में लाने वाले डॉ. हीरालाल जी जैन जगत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विद्वज्जगत में श्रद्धास्पद रहेंगे।

- रमा कान्त जैन

"जैनधर्म अपनी विचार व जीवन संबंधी व्यवस्थाओं के विकास में कभी किसी संकुचित दृष्टि का शिकार नहीं बना। उसकी भूमिका राष्ट्रीय दृष्टि से सदैव उदार और उदात्त रही है।"

-डॉ. हीरालाल जैन : **भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान**

पञ्चाध्यायी का कर्तृत्व

- डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

ग्रन्थराज **पञ्चाध्यायी** की **सुबोधिनी** (भाषा) **टीका** की अपनी भूमिका में न्यायालंकार पं. मक्खनलाल जी शास्त्री ने अब से तिरेपन वर्ष पूर्व (१९१८ ई. में) लिखा था कि "यह **पञ्चाध्यायी** ग्रन्थ जैन सिद्धान्त के उच्चतम कोटि के ग्रन्थों में से एक अद्वितीय ग्रन्थ है। वर्तमान समय के विद्वान तो इस ग्रन्थ को असाधारण और गम्भीर समझते ही हैं, किन्तु ग्रन्थकर्ता ने स्वयं इसे ग्रन्थराज कहते हुए इसके बनाने की प्रतिज्ञा की है।"

वह टीका शास्त्रीजी ने स्वगुरु पं.गोपालदास जी बरैया को समर्पित की थी और समर्पण में लिखा था- "**पञ्चाध्यायी** एक अपूर्व सिद्धान्त ग्रन्थ होने पर भी बहुत काल से लुप्तप्राय था, आपने (गुरु गोपालदास ने) ही अपने शिष्यों को पढ़ाकर इसका प्रसार किया। कभी-कभी इसके आधार पर अनेक तात्त्विक-गंभीर भाषणों से श्रोतृ समाज को भी इस ग्रन्थ के अमृतमय रस से तृप्त किया।" भूमिका में यह भी लिखा है कि यह टीका कोल्हापुर से प्रकाशित मूल प्रति के आधार पर की गई है जिसे कि उन्होंने गुरुजी (गोपालदास जी) से उस ग्रंथ का अध्ययन करते समय शुद्ध किया था। सन् १९१५ ई. में जब पं. मक्खनलाल जी श्री ऋषभब्रह्मचर्याश्रम, हस्तिनापुर (मेरठ) में अध्यापक नियुक्त हुए थे तो वहां स्व. ब्र. सीतलप्रसादजी की प्रेरणा से उन्होंने यह टीका लिखना आरंभ की थी और १९१८ ई. में इसे प्रकाशित कराया था। **पंडित जी** ने स्वीकार किया कि ग्रन्थ के रचयिता कौन हैं, **इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं है।** रचना शैली की समता पर वह अनुमान करते हैं कि **पञ्चाध्यायी के** कर्ता वही स्वामी अमृतचन्द्राचार्य हैं जो **समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय** ग्रन्थों के टीकाकार व **नाटक समयसार कलश, पुरुषार्थसिद्धयुपाय** और **तत्त्वार्थसार** के रचयिता हैं। शैली की जिस समता को अपने अनुमान का आधार बनाया था उसके [illegible] में भी वह पूरी तरह आश्वस्त नहीं थे और अपनी पादटिप्पणी में यह माना कि 'इस प्रकार की समता भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारों में भी पाई जाती है।' **पञ्चाध्यायी** के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ही हैं, अपने इस विश्वास के समर्थन में पंडितजी ने लिखा कि 'हमारे गुरुवर्य पूज्यवर पं. गोपालदास जी का भी ऐसा ही अनुमान था।' (गुरुजी का निधन १९१७ ई. में हो चुका था)।

इतने वर्ष बाद अब फिर न्यायालंकार पंडितजी ने २२ अक्टूबर, १९७० के **जैन गज़ट** में प्रकाशित अपने **'परम पूज्य त्यागीगणों एवं विद्वानों से निवेदन'** के अन्तर्गत प्रश्न-३ में **पञ्चाध्यायी** के कर्तृत्व की समस्या को छेड़ा है। ग्रन्थ के सम्बन्ध में राय तो उनकी अब भी उतनी ही ऊँची है, लिखते हैं कि यह "ग्रन्थ दि. जैन सिद्धान्त शास्त्रों में एक अद्वितीय है। द्रव्य निरूपण और सम्यक्त्व निरूपण उसमें अत्यन्त सूक्ष्म एवं गंभीर रूप से किया हैं। उसकी शब्द शैली तथा भावभंगी बहुत महत्वपूर्ण है, तत्व विवेचन अद्भुत है।", वस्तुतः साधिक अर्धशताब्दी के सिद्धान्तशास्त्रीय अध्ययन-अध्यापन और मनन के फलस्वरूप उनके द्वारा उक्त ग्रन्थ के मूल्यांकन में और अधिक निखार हो आया है और उसमें उनकी आस्था और अधिक दृढ़ हुई लगती है। वह आगे लिखते हैं कि "उसका कर्ता पं. रायमल्लजी को कुछ विद्वान बताते हैं जिन्होंने **लाटी संहिता** रची है। परन्तु उस रचना में **पञ्चाध्यायी** के समान तलस्पर्शी तत्वविवेचन नहीं है, और भी कई हेतु हैं। **पञ्चाध्यायी** का मनन करके स्व. पं. बलदेवदासजी ने स्व. पं. गोपालदासजी को **पञ्चाध्यायी** पढ़ाई थी, उक्त दोनों अनुभवी महान विद्वानों का स्पष्ट कहना था कि **पञ्चाध्यायी** ग्रन्थ पं. रायचन्द्र जी द्वारा रचित कदापि नहीं है। किन्तु **पञ्चाध्यायी** की रचना आचार्य अमृतचन्द्रसूरि की रचना से मिलती है।" इसके आगे पंडित जी ने सभी परमपूज्य आचार्यों, मुनियों एवं अन्य त्यागियों से, इस बात की व्यवस्था मांगी है कि "**पञ्चाध्यायी** को अप्रमाण कहना कहां तक संगत है?" समाज के अनुभवी विद्वानों को भी प्रश्न पर गम्भीरता से विचार कर समाधान करने के लिये आमन्त्रित किया है।

पं. मक्खनलाल जी शास्त्री के उपरोक्त दोनों लेखों में कतिपय अजीब विसंगतियां हैं और कई नये प्रश्न खड़े हो गये हैं। अपनी सन् १९१८ ई. वाली भूमिका में उन्होंने **पञ्चाध्यायी** के प्रसंग में स्व. पं. बलदेवदासजी का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया। वहाँ केवल एक पादटिप्पणी में स्व. पं. गोपालदासजी के उसके कर्तृत्व विषयक अनुमान मात्र का उल्लेख किया है। अपने एक अन्य लेख (**बरैया स्मृतिग्रन्थ**-१९६७ ई. में प्रकाशित) में पं. बलदेवदासजी के बारे में यह अवश्य कहा है कि '**पञ्चाध्यायी** का मर्म वे पूर्ण रूप से जानते थे' और यह कि वह 'पं. गोपालदासजी के गुरु थे, जिनसे गुरुजी ने **पञ्चाध्यायी** आदि ग्रन्थ पढ़े थे।' हो सकता है कि यह बातें सही हो, किन्तु क्या यह भी सही है, जैसा कि **जैन गज़ट** वाले लेख में लिखा है कि "उक्त दोनों अनुभवी महान् विद्वानों का स्पष्ट कहना था कि **पंचाध्यायी** ग्रन्थ पं. रायचन्द्रजी द्वारा रचित कदापि नहीं है?"

प्रथम तो, ऐसी बात होती तो पंडितजी अपनी उपरोक्त भूमिका में उसे अवश्य लिखते। दूसरे, उन्होंने अपनी होश में पं. बलदेवदास का संसर्ग किया नहीं, उनके मुख से तो उनका मत सुना नहीं हो सकता। तीसरे, पं. रायचन्द्र नाम के किसी विद्वान का नाम **पंचाध्यायी** के कर्ता रूप में आज तक किसी विद्वान अन्वेषक ने लिया ही नहीं है। चौथे, पं. बलदेवदास और पं. गोपालदास दोनों के सम्मुख इस प्रकार का कोई विकल्प ही नहीं था-वे **पंचाध्यायी** को अज्ञातकर्तक समझते थे और संभव है पं. गोपालदासजी ने कभी अपना यह अनुमान भी व्यक्त किया हो कि हो सकता है आचार्य अमृतचन्द्र ही उसके कर्ता हों क्योंकि इसकी रचना उक्त आचार्य की रचना से मिलती प्रतीत होती है। किन्हीं रायचन्द्र का नाम उन्होंने इस प्रसंग में लिया हो ही नहीं सकता।

दूसरी बात जो पंडितजी ने उठाई वह यह है कि कुछ विद्वान **लाटीसंहिताकार** पं. रायमल्ल को **पंचाध्यायी** का कर्ता बताते हैं। सो **लाटीसंहिता** के कर्ता पं. रायमल्ल नहीं, पांडे राजमल्ल हैं, ओर वे 'कुछ विद्वान' स्व. पं. जुगलकिशोर मुख्तार हैं जिन्होंने **पंचाध्यायी** की पंडितजी की टीका प्रकाशित होने के ६-७ वर्ष पश्चात् **'वीर'** पत्र के वर्ष ३, अंक १२-१३ में पंडितजी के मत को पूर्णतया खंडित करके यह सिद्ध कर दिया था कि **पंचाध्यायी** के कर्ता **लाटीसंहिताकार** पांडे राजमल्ल हैं जो १६वीं शती ई. के अकबरकालीन एक समर्थ जैन विद्वान और साहित्यकार थे। मुख्तार साहब के उपरोक्त लेख का उत्तर पंडित जी ने या अन्य किसी विद्वान ने हमारे जानते आज तक नहीं दिया और उसी के आधार पर स्व. पं. नाथूराम प्रेमी तथा अन्य प्रायः सब साहित्यिक इतिहास के अध्येता आधुनिक विद्वान **पांडे राजमल्ल** को ही **पंचायध्यायी** का कर्ता मानते हैं। मुख्तार साहब के उक्त लेख के समय तक इन पांडे राजमल्लजी के केवल एक ही **ग्रन्थ—लाटीसंहिता** का पता था और उनके स्वयं के विषय में भी बहुत सीमित जानकारी उपलब्ध थी। उसके उपरान्त इस विद्वान के अन्य कई ग्रन्थ प्रकाश में आये और उनके स्वयं के विषय में भी बहुत कुछ नई जानकारी प्राप्त हुई है।

लाटीसंहिताकार को **पंचाध्यायी** का कर्ता न मानने में एक हेतु तो पंडितजी ने यह दिया है कि उनकी रचना में **पंचाध्यायी** के समान तलस्पर्शी तत्व विवेचन नहीं है। साथ ही लिखा है कि 'और भी कई हेतु हैं।' ये और जो कई हेतु हैं वे तो अभी तक अप्रगट हैं, अतः जब तक पंडितजी उन्हें प्रगट नहीं करते उनके बारे में तो कोई

विचार किया नहीं जा सकता। जहां तक उक्त दोनों ग्रन्थों में तलस्पर्शी तत्व विवेचन की समानता के न होने का प्रश्न है, वह बात तो सहज ही समझ में आ सकती है। **लाटीसंहिता** एक श्रावकाचार विषयक ग्रन्थ है, सामान्य बुद्धि के श्रावकों की प्रेरणा से उन्हीं के तथा उन्हीं सदृश सामान्य जनों के बोध एवं उपयोग के लिए रचा गया है, जबकि **पंचाध्यायी** का जितना अंश उपलब्ध है उसके प्रथम ७७० पद्यों में 'द्रव्य सामान्य निरूपण' और शेष ३७५ श्लोकों में 'द्रव्य विशेष निरूपण' है जो अधूरा है। ऐसा लगता है कि मूलतः प्रस्तावित पांच अध्यायों में से केवल डेढ़ अध्याय के लगभग रचना करके ही ग्रन्थकार महोदय कालकवलित हो गये और ग्रन्थ अपूर्ण-अधूरा रह गया। जितना भी कुछ यह है इसमें अध्यात्म प्रधान स्याद्वाद पद्धति से द्रव्यानुयोग का विस्तृत एवं गम्भीर सैद्धान्तिक विवेचन है, जो सिद्धान्त मर्मज्ञ प्रौढ़ शास्त्राभ्यासियों को लक्ष्य करके रचा गया है। दोनों ग्रन्थों की विधा, स्पष्ट ही है, भिन्न होनी ही थी। दूसरे, इन दोनों ग्रन्थों के रचनाकालों में भी कम से कम दस-पांच वर्ष का अन्तराल रहा प्रतीत होता है। अतएव, **लाटी संहिता** में **पंचाध्यायी** के समान तलस्पर्शी तत्वविवेचन न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्या स्वयं अमृतचन्द्राचार्य के **समयसार कलश, समयसार** आदि की टीकाओं में और उन्हीं के **तत्वार्थसार** या **पुरुषार्थ सिद्धयुपाय** में सर्वथा यकसा तलस्पर्शी तत्व विवेचन है ?

पं. मक्खनलाल जी ने एक प्रश्न किया है कि **'पंचाध्यायी को अप्रमाण कहना कहाँ तक संगत है?' इससे लगता है कि कुछ लोग पंचाध्यायी को अप्रमाण तक कहने लगे हैं, लेकिन क्यों? क्या केवल इसीलिए कि उसके अमृतचन्द्राचार्यकृत होने में सन्देह है और उसके कर्ता पांडे राजमल्ल नाम के एक ऐसे विद्वान सिद्ध होते हैं जिनके नाम के साथ आचार्य या मुनि विशेषण नहीं लगा है? क्या पं. आशाधर, पांडे राजमल्ल, आचार्यकल्प कहे जाने वाले पं. टोडरमल्ल, पं. दौलतराम, पं. गोपालदास बरैया तथा वर्तमान के दिग्गज पंडितजन न्यायाचार्य पं. माणिकचन्द, न्यायालंकार पं. मक्खनलाल इत्यादि की कृतियां इसीलिये अप्रमाण हो जायेंगी कि वे कोई त्यागी, मुनि, आचार्य आदि नहीं हैं ? आचार्य और मुनि नामधारी अनेक भट्टारकों ने ग्रन्थ रचे हैं, कितने ही महाव्रती मुनियों ने भी ग्रन्थ रचे हैं, और इन भट्टारकों तथा मुनियों में अनेक विद्वत्ता, सिद्धान्तमर्मज्ञता, शास्त्राभ्यास आदि में, तथा जन्मजात प्रतिभा की दृष्टि से भी उपरोक्त गृहस्थ पंडित प्रवरों की समता नहीं कर सकते, तब भी क्या उनके भ्रान्त,**

भ्रामक, त्रुटिपूर्ण अथवा आम्नाय विरुद्ध कथन केवल उनके मुनि या मुनिनामधारी होने मात्र से प्रमाण हो जायेंगे और साहित्यिक तपस्वी उन सरस्वती पुत्रों की रचनाएं, जो चारित्रमोहनीय के उदय से गृहत्याग न कर सके, अप्रमाण एवं अमान्य हो जायेंगी? पंडितजी ने जो **पंचाध्यायी** की प्रमाणता-अप्रमाणता का फतवा सभी परमपूज्य आचार्यों, मुनिराजों एवं अन्य त्यागियों से मांगा है, उसमें क्या रहस्य है, यह समझ में नहीं आया। उपरोक्त प्रश्न समस्त विद्वानों के द्वारा गम्भीरता के साथ विचारणीय है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

उपलब्ध **पंचाध्यायी** में अवश्य ही ऐसा कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है जिससे कि सुनिश्चित एवं नितान्त असंदिग्ध रूप से यह कहा जा सके कि उसके कर्ता अमुक हैं। तथापि, स्व.पं.जुगलकिशोर जी मुख्तार ने केवल अपनी पसन्द या अनुमान के बल पर पांडे राजमल्लजी को उसका कर्ता घोषित नहीं किया। साहित्यैतिहासिक शोध-खोज एवं अन्वेषण के वह महापंडित थे। वस्तुतः, विभिन्न ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन, उनके अन्तःपरीक्षण तथा पूर्वापर निर्णय करने में, एकाधिक प्रतियों में उपलब्ध पाठांतरों में से सही शुद्ध पाठ स्थिर करने और ग्रन्थ एवं ग्रन्थकर्ता का जितना हो सके इतिवृत्त खोज निकालने में, आधुनिक काल के जैन विद्वानों में स्व. मुख्तार साहब सर्वाग्रणी ही नहीं, अद्वितीय थे, इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। वह इस क्षेत्र के विशेषज्ञ थे और उसमें उनकी बात प्रमाणकोटि की मान्य होती है। अपने पूर्वोक्त लेख में उन्होंने **पंचाध्यायी** का अन्तःपरीक्षण उसी गहराई, सूक्ष्मता एवं विस्तार के साथ किया है और परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर सुनिश्चितरूप से सिद्ध कर दिया कि **पंचाध्यायी** के कर्ता **लाटीसंहिताकार** पांडे राजमल्ल ही होने चाहियें। उनके उक्त लेख के बाद इस विषय पर कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है, जब तक कि कोई नवीन साधक या बाधक साक्ष्य प्रकाश में न आये। तब से अब तक ऐसा कोई भी तथ्य प्रगट नहीं हुआ है जो सुनिश्चित रूप से यह सिद्ध कर सके कि उपलब्ध **पंचाध्यायी** पांडे राजमल्ल की कृति नहीं है, अथवा यह कि वह अमृतचन्द्राचार्य की ही कृति हैं बल्कि यह कहा जा सकता है कि पांडे राजमल्लजी के सम्बन्ध में जो अतिरिक्त जानकारी हुई है वह मुख्तार साहब के मत की पुष्टि ही करती है।

पांडे राजमल्लजी दिगम्बर परम्परा के काष्ठासंघ-माथुरगच्छ-पुष्करगण के दिल्ली पट्टाधीश भट्टारक हेमचन्द्र की आम्नाय के विद्वान पंडित थे और संभवतया

किसी भट्टारकीय गद्दी से सम्बद्ध न रहकर स्वतन्त्र विचरते थे, बहुत करके एक गृहत्यागी गृहस्थाचार्य के रूप में। विभिन्न समयों में आगरा, मथुरा, वैराट, शाकुंभरी, अजमेर आदि स्थानों में उनका रहना पाया जाता है। मुग़ल सम्राट अकबर के वह समकालीन थे और १६वीं शती ई. के उत्तरार्द्ध में विद्यमान थे। वि. सं. १६३२ (१५७५ ई.) में उन्होंने भटानिया कोल निवासी राज्यमान्य अग्रवाल साहु टोडर की प्रेरणा से संस्कृत में **जम्बूस्वामी चरित** आगरा में रहते लिख था और उक्त साहु द्वारा मथुरा में प्राचीन ५१४ जैन स्तूपों का जीर्णोद्धार कराके उनकी प्रतिष्ठा की थी। वि. सं. १६४१ में **लाटीसंहिता** की रचना वैराट (जयपुर के निकट) के निवासी संघपति फामन के लिए की थी-वैराटनगर में ही रहकर। संभवतया इसके पूर्व ही वह सम्राट के कृपापात्र शाकुंभरी के शासक नागौर निवासी राजा भारमल्ल श्रीमाल के लिये **'प्राकृत पिंगल'** अपर नाम **'छन्दोविद्या'** नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में रच चुके थे। **समयसार नाटक** (अमृतचन्द्राचार्यकृत) की जिस बालबोध भाषा टीका को पढ़कर पं. बनारसीदास जी उस ग्रन्थ और उसके विषय के रसिया बने थे उसके रचयिता भी यही पांडे राजमल्ल थे— ऐसा हमारा अनुमान है, और स्व. मुख्तार साहब से इस विषय में मतभेद है। एक तो, पं. बनारसीदास जी के ये शब्द-

"पांडे राजमल्ल जिन धर्मी, समैसारनाटक के मर्मी।
तिन्हीं ग्रन्थ की टीका कीनी, बालबोध सुगम कर दीनी।"

इस विषय में सन्देह के लिये कोई गुंजाइश नहीं छोड़ते। दूसरे, पांडे राजमल्लजी की इस **बालबोध टीका** की सर्वप्राचीन प्रति वि.सं. १६५३ की है। तीसरे, उस काल के जिन दो विद्वानों के साथ नाम साम्य के संदेह पर भ्रम हो सकता है वह एक तो मालवा के भ. अनन्तकीर्ति के शिष्य ब्रह्मरायमल्ल थे, जिन्होंने हिन्दी में **छन्दोबद्ध, हनुमंतचरित, भविष्यदत्त कथा, सुदर्शनरास, श्रीपालरास,** आदि कई कृतियां वि.सं. १६१६ और १६३३ के मध्य रची थीं। दूसरे रायमल्ल वर्णी थे जो सूरत पट्ट के भ. वादिचन्द्र के शिष्य थे। उन्होंने वि.सं. १६६७ में **भक्तामर स्तोत्र वृत्ति** (संस्कृत) की रचना की थी। इनमें से प्रथम अधिकतर राजस्थान में ही रहे और द्वितीय गुजरात में। इन दोनों में से किसी के साथ भी पं. बनारसीदास जी द्वारा उल्लेखित पांडे राजमल्ल का एकत्व स्थापित नहीं किया जा सकता। हमें इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अमृतचन्द्राचार्यकृत **समयसार नाटक** की उपरोक्त **बालबोध भाषा वचनिका** के कर्ता पांडे **राजमल्ल प्राकृतपिंगल (छन्दोविद्या), जम्बुस्वामी चरित** और **लाटीसंहिता**

के रचयिता पांडे राजमल्ल से अभिन्न हैं और वही विवक्षित **पंचाध्यायी** के भी कर्ता हैं। आचार्य अमृतचन्द्र के **समयसार नाटक (कलश)** के मर्मी और उसकी वचनिका लिखने वाले विद्वान की भाषा और शैली का उक्त आचार्य की भाषा, शैली और भावों से प्रभावित होना स्वाभाविक ही है। इन पांडे राजमल्लजी के **'श्री स्याद्वादनवद्य गद्य-पद्य विशारद'** और **'विद्वन्मणि'** विरुद उन्हें अकारण ही प्राप्त नहीं हुए थे। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि कई भाषाओं पर, और साहित्य रचना की गद्य-पद्य की विभिन्न शैलियों पर इनका अच्छा अधिकार था। वह विविध विषय पटु, जिनागम के वेत्ता और गम्भीर पांडित्य के धनी थे, जिन जिनभक्त श्रावकों के हितार्थ या प्रेरणा से उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना की, उनकी तो बड़ी-बड़ी प्रशस्तियां रच डालीं, किन्तु स्वयं अपना, नाम के सिवा, प्रायः कहीं कोई परिचय नहीं दिया। यह तथ्य उनकी निस्पृह वृत्ति का द्योतक है और कदाचित् इस बात का भी कि वह गृहत्यागी थे।

इस प्रसंग में शायद यह कहना अनुचित न होगा कि, यद्यपि विशेषज्ञता का महत्व सदैव रहा है, वर्तमान युग खासतौर से विशेषज्ञता का युग है। एक व्यक्ति का सभी विषयों में समान रूप से प्रवेश और अधिकार नहीं होता। अतएव, जिस विषय पर अपना विशेषाधिकार नहीं है उसके सम्बन्ध में उसके अधिकारी विद्वान के मतामत को समुचित मान देने में मानापमान का प्रश्न नहीं होता। कारण विशेष से कोई कदाग्रह ही हो तो बात दूसरी है।

(जैन-सन्देश शोधांक २६, ११ फरवरी, १६७१ ई. से साभार उद्धृत)

स्वयंभू पुरस्कार-२००७

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित जैन विद्या संस्थान, श्री महावीरजी के वर्ष-२००७ के **स्वयंभू पुरस्कार** के लिए अपभ्रंश से संबंधित विषय पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी में रचित रचनाओं की चार प्रतियां **३० सितम्बर, २००७** तक आमन्त्रित हैं। इस पुरस्कार में रु.२१००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। ३१ दिसम्बर, २००४ के पश्चात् प्रकाशित कृतियां ही इस पुरस्कार में सम्मिलित की जायेंगी। नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिए संस्थान कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-४ से पत्र व्यवहार करें।

- डॉ. कमलचन्द सोगाणी, संयोजक

वाग्देवी के अवतरण का पर्व-श्रुत पंचमी

- श्री अजित प्रसाद जैन

जैन आगमों की रचना के विषय में यह ऐतिहासिक तथ्य है कि अन्तिम तीर्थंकर महाप्रभु भगवान महावीर स्वामी की प्रथम देशना श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को पंच-शैलपुर राजगृह के मनोरम विपुलाचल पर्वत पर लगे समवशरण में हुई थी। समवशरण भगवान की धर्म सभा को दिया गया नाम है क्योंकि उसमें जगत के प्रत्येक प्राणी को बिना किसी भेद-भाव के एक साथ बैठकर भगवान की दिव्य ध्वनि सुनकर अपना कल्याण करने का समान अधिकार प्राप्त था। प्रथम देशना की पूर्व-संध्या को अर्थात् आषाढ़ी पूर्णिमा को उस समय के विख्यात ११ ब्राह्मण महापंडितों ने भगवान से अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त कर अपने विशाल शिष्य परिवार सहित भगवान का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था जिस कारण आषाढ़ी पूर्णिमा लोक में गुरु-पूर्णिमा पर्व के रूप में विख्यात हुई। ये महापंडित भगवान के गणधर, अर्थात् प्रमुख शिष्य, बने जिनमें श्री इन्द्रभूमि गौतम अग्रणी थे। यह घटना वर्ष ई. पूर्व ५५७ में घटित हुई थी।

तीर्थंकर महावीर प्रभु अपने १२ वर्ष के दीर्घ एवं कठोर साधना काल में प्रायः मौन ही रहे थे। न तो उन्होंने कोई उपदेश दिया था और न ही कोई शिष्य बनाया था। उन्होंने केवलज्ञान अर्थात् पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद ही अपने प्रथम शिष्य बनाए थे जिनमें ११ गणधर प्रमुख थे और तब ही उन्होंने सभी प्राणियों के कल्याणार्थ धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया था।

अनुश्रुति है कि तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की दिव्य देशना अर्थरूप थी जिसे गणधर देवों ने शब्दों में गुम्फित करके द्वादशांग श्रुत का रूप दिया। यही द्वादशांग जिनवाणी कहलाई। श्रुत का अवतरण हुआ। भगवान महावीर स्वामी से सहस्रों-सहस्रों वर्षों पूर्व मानव सभ्यता के ऊषा काल में जन्मे आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ पर्यन्त सभी तीर्थंकरों ने इसी प्रकार श्रेय मार्ग का उपदेश दिया था, किन्तु वह अंतहीन काल-प्रवाह में लुप्त हो चुका था।

भगवान महावीर स्वामी के प्रमुख शिष्यों इन्द्रभूमि गौतम आदि गणधरों द्वारा गुम्फित द्वादशांग श्रुत को सैकड़ों वर्षों तक ज्योतिर्धर आचार्यों द्वारा गुरु-शिष्य परम्परा से स्मृति पटल पर संजोए रखने का प्रयास किया गया, किन्तु वीर निर्वाण

के १६२ वर्ष के उपरान्त ही सम्पूर्ण श्रुत के धारक प्रज्ञावान आचार्यों की परम्परा अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी के साथ समाप्त हो गई तथा स्मृति-क्षीणता के कारण द्वादशांग श्रुत के कतिपय अंशों के एक-देश ज्ञाता आचार्य एवं मुनिराज ही विद्यमान रह गए। दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार द्वादशांग श्रुत के बहुभाग का स्मृति-क्षीणता के कारण लोप हो गया तथा अवशिष्ट श्रुत को भी भविष्य में विलुप्त हो जाने की आशंका से चिन्तित होकर श्रुत के कुछ एक-देश ज्ञाता आचार्यों ने अपने को गुरू-शिष्य परम्परा से प्राप्त श्रुतांश को स्वतंत्र ग्रंथों के रूप में निबद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। श्रुत-केवलियों के उपरान्त ही ईसा पूर्व की शताब्दियों में इन श्रुतधर आचार्यों की अनुकम्पा से रचे गए महान ग्रंथों में भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य के **समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड** आदि, भगवान गुणधराचार्य कृत **कषाय पाहुड**, आचार्य वट्टकेरि कृत **मूलाचार** तथा शिवार्य कृत **भगवती आराधना**, दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के मूल आगम ग्रंथों में प्रमुख हैं। पर श्रुतदेवी का अवतरण अभी तक नहीं हुआ माना जाता क्योंकि उन ग्रंथों की रचना तो हुई पर उनके रचनाकाल में उन्हें लिपिबद्ध नहीं किया गया। परम वीतरागी, परम निष्परिग्रही, सतत् परिव्राजक, दिगम्बर जैन मुनिराज करुणा एवं शुचिता के प्रतीक उपकरण मयूर पिच्छी तथा कमंडल के अतिरिक्त अन्य कोई परिग्रह अपने साथ नहीं रखते थे। शास्त्रों का ज्ञान कंठस्थ रूप में ही निर्ग्रन्थ मुनिराज अपने साथ लेकर सतत विहार करते रहते थे।

श्रुत देवी के अवतरण का श्रेय सर्वप्रथम प्राप्त हुआ आचार्य द्वय भगवंत पुष्पदंत व भूतबलि को जिन्होंने अपने शिक्षा गुरू श्रुतधर आचार्य धरसेन से द्वादशांग जिनवाणी के बारहवें दृष्टिवाद अंग में समाहित अग्रायणी पूर्व के चयन लब्धि अधिकार के कर्म प्रकृति प्राभ्रत का अध्ययन करके **षट्खण्डागम** ग्रंथ की रचना की तथा उसे ताड़पत्रों पर लिपिबद्ध कराकर चतुर्विध संघ ने सन् ७५ ई. की ज्येष्ठ **शुक्ल पंचमी** को इस ग्रंथ को पुस्तकारूढ़ कर इसकी पूजा की। श्रुत देवी का अवतरण हुआ। वीणा-पाणि देवी सरस्वती के जैन संस्करण ने पुस्तकधारिणी ज्ञान की देवी का **रूप** धारण किया तथा ज्ञान के सार्वजनिक प्रचार-प्रसार के युग का प्रारम्भ हुआ। पुस्तक-धारिणी वाग्देवी की सन् १३२ ई. की एक प्रतिमा भी मथुरा के कंकाली टीले के उत्खनन से प्राप्त हुई है। ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी श्रुतपंचमी या ज्ञान-पंचमी पर्व के रूप में विख्यात हुई।

कदाचित् यह किसी ग्रंथ के पुस्तकारूढ़ किए जाने का विश्व के सम्पूर्ण इतिहास में प्राचीनतम ऐतिहासिक उल्लेख है। श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में धर्म ग्रंथों के लिपिकरण की प्रक्रिया **षट्खंडागम** ग्रंथ की रचना एवं लिपिकरण के लगभग ४०० वर्ष बाद से ही प्रारम्भ हुई जब देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने वल्लभी नगर में श्रुतधर मुनियों के सम्मेलन में सम्पन्न हुई तीसरी आगम वाचना के आधार पर अवशिष्ट अंग सूत्रों को संकलित कर लिपिबद्ध किया था।

षट्खंडागम दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का प्रथम आगम ग्रंथ है जो लिपिबद्ध करके पुस्तकारूढ़ किया गया। श्रुत पंचमी के दिन इस सम्प्रदाय द्वारा शास्त्रों को वेदिका पर प्रतिष्ठापित कर श्रुत देवी सरस्वती की पूजा की जाती हैं, शास्त्र भण्डारों की विशेष सार-संभाल व झाड़-पोंछ की जाती है, हस्तलिखित जीर्ण-शीर्ण पन्नों को बदला जाता है या सुरक्षित किया जाता है और हस्तलिखित शास्त्रों को नये वेष्ठनों में बांधा जाता है। इस दिन मंदिरों के शास्त्र भंडारों को धर्मनिष्ठ श्रावक शास्त्र भेंट करने में विशेष पुण्य मानते हैं।

वस्तुतः यह श्रुत पंचमी पर्व शास्त्र भंडारों-पुस्तकालयों के प्रारम्भ किए जाने का स्मृति पर्व है। दूर-दृष्टि जैन आचार्यों ने गृहस्थ धर्म में दान की महत्ता पर विशेष बल दिया था, और गृहस्थ द्वारा दिये जाने वाले औषधि, आहार व अभय दान के साथ-साथ शास्त्र दान के द्वारा विशेष पुण्य का अर्जन होना घोषित किया था तथा श्रावक के षट् आवश्यक नैत्यिक कर्म में शास्त्र-पूजा तथा स्वाध्याय को विशेष स्थान दिया था। परिणाम स्वरूप हमें मध्ययुगीन शिलालेखों से पता चलता है कि धर्मनिष्ठ राजन्य एवं श्रेष्ठि वर्ग आचार्यों, कवियों एवं विद्वानों से अनुरोध करके नवीन ग्रंथों का निर्माण कराते थे तथा ग्रंथ पूर्ण होने पर गाजे-बाजे के साथ उसकी हाथी पर शोभायात्रा निकालते थे और ग्रंथ की अनेक प्रतिलिपियां तैयार करा कर विभिन्न स्थानों के मंदिरों को भेंट स्वरूप भेजते थे। श्रवणबेलगोल (कर्नाटक) के एक शिलालेख से पता चलता है कि होयसल्ल सम्राट विष्णुवर्धन की पट्ट महादेवी शान्तला देवी (१०६०-११२८ ई.) ने **षट्खंडागम** ग्रंथ को (एक लाख श्लोक प्रमाण धवला टीका सहित) ताड़ पत्रों पर उत्कीर्ण करा कर जिन मंदिरों को दान स्वरूप भेंट किया था। ग्रंथ के पन्नों पर शान्तला देवी तथा सम्राट विष्णुवर्धन के स्वर्ण चित्र भी अंकित किए गए थे। एक अन्य शिलालेख से पता चलता है कि उससे भी लगभग १०० वर्ष पूर्व चालुक्य सम्राट तैलप वाहकमल्ल के महादंडनायक श्रेष्ठि-पुत्र नागदेव की धर्म-पारायण

पत्नी सती अतिमब्बे ने कन्नड़ के महाकवि पोन्न द्वारा **शान्तिनाथ पुराण** की रचना कराई तथा उसकी एक सहस्र प्रतियां ताड़पत्रों पर उत्कीर्ण करा कर विभिन्न जैन मंदिरों में वितरित करा कर **'दान चिन्तामणि'** का विरुद अर्जित किया था।

धर्मनिष्ठ श्रावक-श्राविकाओं द्वारा शास्त्र-दान का पुण्य अर्जित करने की अदम्य भावना ने मुद्रण के युग के पूर्व-काल में श्रावक लिपिकारों के एक वर्ग को ही जन्म दे दिया था जो स्नानादि के बाद शुद्ध वस्त्र पहन कर शुद्ध रूप से तैयार की गई स्याही से हाथ से बने कागजों पर बड़े भक्तिभाव से शास्त्रों की प्रतिलिपियां तैयार किया करते थे। इन में से ही कालान्तर में एक-से-बढ़कर एक शास्त्र-मर्मज्ञ गृहस्थ विद्वान पैदा हुए।

मुद्रण युग प्रारम्भ होने के बाद आज भी धर्मनिष्ठ जैन श्रावकों द्वारा शास्त्र-भण्डारों को शास्त्र-दान देने की प्रथा कायम है तथा जैन मंदिरों में विशाल शास्त्र-भंडार इस प्रथा के सुफल रूप में नित्य प्रति अभिवृद्धि कर रहे हैं। हमारी राज्य सरकारें भी पुस्तक अनुदान द्वारा सार्वजनिक पुस्तकालयों के पुस्तक भंडारों में सत् साहित्य की अभिवृद्धि कर प्रच्छन्न रूप से ज्ञान की देवी पुस्तक-धारिणी सरस्वती की उपासना कर रही हैं। हम सब मिल कर ज्ञान के प्रचार-प्रसार के पर्व को मनाएं तथा सत् साहित्य खरीद कर व सत् साहित्य के स्वाध्याय का नियम लेकर वाग्देवी की उपासना करें।

(शोधादर्श-२६ से उद्धृत)

यदीया वाग्गंगा विविध-नय-कल्लोल विमला
वृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुध-जन-मरालैः परिचिता
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।।

-कवि भागचन्द्र विरचित
महावीराष्टक स्तोत्रम्, श्लोक ६

सम्पादकीय

सन्त समागम

क्यों जुटती है भीड़ जब हमारी बस्ती में किसी सन्त का आगमन होता है, यह प्रश्न मन में कौंधता है। इस प्रश्न पर विचार करते हुए हमारा ध्यान इस बात पर जाता है कि आम आदमी, कहीं का भी हो, परम आस्थावान होता है। साधु-सन्तों के प्रति उसके मन में सहज विनय भाव होता है। अतः साधु-सन्त के आगमन पर उसका चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। यदि साधु-सन्त अपनी आकृति-प्रकृति और वेश से सौम्य-सुदर्शन होता है, तो उसके प्रति अनुराग स्वतः बढ़ जाता है। यदि उसकी वाणी में सम्मोहन है, वह वाक्पटु या प्रवचन कुशल है, और सरल भाषा में सहज रोचक ढंग से सामयिक लोकहित की, ज्ञान की बातें करता है तो जनसमुदाय का आकर्षण उसे सुनने के लिये बढ़ जाता है । और यदि साथ में उस साधु-सन्त का आचरण सन्तोचित होता है तो वह सोने में सुहागे का कार्य करता है। ये तो स्वाभाविक सात्विक प्रक्रियाएं हैं किसी भी सन्त के प्रति आकृष्ट होने की। जिस धर्म-सम्प्रदाय से साधु-सन्त का सम्बन्ध होता है उस धर्म-सम्प्रदाय के अनुयायी तो स्वतः उसके पास भक्तिभाव से जुटते ही हैं अन्य धर्म-सम्प्रदाय के व्यक्ति भी उसके दर्शन और प्रवचन सुनने को एकत्रित हो जाते हैं और उसका लाभ उठाते हैं।

इन सात्विक प्रक्रियाओं से परे कुछ और भी बातें हैं जो भीड़ को वृद्धिंगत करने में सहायक होती हैं। हमारी मानवीय दुर्बलता है कि हम अपने कष्टों से पार पाने के लिये और अप्रत्याशित लाभ, लौकिक समृद्धि, पाने के लिये किसी ज्योतिषी, मंत्र-तंत्र ज्ञाता का सहारा ढूंढ़ते हैं। चमत्कार को नमस्कार करना हमारा स्वभाव बन गया है। अतः जो साधु-सन्त ज्योतिष अथवा मंत्र-तंत्र का ज्ञाता होने की बात करता है, किसी अनुष्ठान-विधान द्वारा लोगों के कष्ट निवारण करने या उन्हें अप्रत्याशित लाभ दिलाने की बात करता है, अथवा चमत्कार प्रदर्शित करने की बात करता है, वह मूढ़ भक्तों के लिये एक उपयोगी आकर्षण केन्द्र बन जाता है और भीड़ बढ़ जाती है। भक्तगण उसके संकेत मात्र पर अपना श्वेत श्याम धन प्रभूत मात्रा में व्यय करने में तनिक भी संकोच नहीं करते। कौन साधु-सन्त अपने भक्तों का कितना धन व्यय करा ले जायगा, अपने निमित्त आयोजित कार्यक्रमों को कितना भव्य और जनसंकुलित बना ले जायगा यह उस साधु-सन्त की प्रचार-प्रबन्धन में अपनी प्रवीणता पर निर्भर करता है। इसके विपरीत यदि कोई सीधा सादा त्यागी महात्मा आ जाता है, तो उसके पास भीड़ जुटना तो दूर उसके आहार-पानी का जुगाड़ भी समस्या हो जाता है।

इन्सान की एक नैसर्गिक वृत्ति संगीत-नृत्य में रुचि भी है। अतः जब किसी प्रभावक साधु-सन्त के निमित्त आयोजित कार्यक्रमों में संगीत-नृत्य का प्रदर्शन करने का अवसर भी उपस्थित हो जाय तब संगीत-नृत्य प्रिय जन उस अवसर को नहीं चूकते और ऐसे कार्यक्रमों में भीड़ द्विगुणित हो जाती है। और जब ऐसे कार्यक्रमों में जलपान की व्यवस्था भी हो तो क्या कहना, भीड़ चौगुनी हो जाती है।

साधु-सन्त किसी भी धर्म-सम्प्रदाय से सम्बद्ध हों, आत्मोन्नयन करने के साथ-साथ लोकोपकार करने वाले माने जाते हैं, अतः आम आदमी के लिये श्रद्धास्पद होते हैं। साधु चर्या बड़ी कठिन होती है। जैन साधु की विहित चर्या तो और भी कठिन। साधु-सन्त अपनी सरल निर्दोष चर्या द्वारा, अपने चमत्कारी और लोकरंजक स्वरूप को छोड़कर, आम आदमी के हृदय में श्रद्धास्पद बने रहें, यह अभीष्ट है।

सुनने में आया है कि इस वर्ष एक मुनि महाराज के चातुर्मास पूर्व तीन माह के कार्यक्रमों में ही भक्तगण का लगभग एक करोड़ रुपया व्यय हो गया। यदि चातुर्मास पूर्व कार्यक्रमों में धन व्यय की यह स्थिति है, तब चातुर्मास के दौरान उन मुनिश्री पर तथा अन्य मुनि महाराजों पर समाज द्वारा किये जाने वाले धन-व्यय का आकलन क्या होगा, आप स्वयं समझ लें। क्या यह स्थिति किसी प्रकार उचित है, जैन समाज को अन्य समाजों की आँखों की किरकिरी बनाने वाली नहीं है? यह गम्भीरता से विचारणीय है।

आषाढ़ी पूर्णिमा से वर्षावास प्रारम्भ हो रहा है जब अपरिग्रही, वीतरागी जैन साधु-सन्त चार मास के लिये किसी एक नगर-बस्ती में स्थिरावास करेंगे और श्रावकगण को उनके सत्संग एवं धर्मोपदेश का लाभ उठाने का अवसर मिलेगा। किसी साधु-सन्त को या किसी भी व्यक्ति को कोई मार्गदर्शन देने का तो हमें कोई अधिकार नहीं है, तदपि यह अभिलाषा और उनसे विनती अवश्य है कि चातुर्मास के दौरान मुनिश्री अपने अहं और मान का पोषण न करके आत्म-प्रचार से विरत हो आत्म-चिन्तन में लीन रहे तथा सरल निर्दोष साधु चर्या से श्रावकों के समक्ष आदर्श उपस्थित करें। साथ ही अपने प्रवचनों के द्वारा समाज में विघटन नहीं अपितु संगठन और सौहार्द के बीज वपन करें, श्रावकों के मन में शाश्वत नैतिक मूल्यों को जगायें, सामाजिक कुरीतियों को दूर करानें का प्रयास करें तथा अपने निमित्त कोई अनावश्यक व्यय न करायें। साधर्मी भाई भी तंत्र-मंत्र, जो मात्र मन का छलावा है, के चक्कर में न पड़कर इन तपस्वी जन के सत्संग से अपना आत्मोन्नयन करें, धर्म के शाश्वत नैतिक मूल्यों को अपने जीवन में आत्मसात करें। तभी चातुर्मास की सार्थकता है। आशा है साधुवृन्द और साधर्मी भाई इस अल्पज्ञ की इस विनती पर ध्यान देंगे।

- रमा कान्त जैन

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के प्रभावक जैन संत

- डॉ. शशि कान्त

१६५० से १६८० ई. के तीन दशकों के जैन समाज की विभिन्न आम्नायों में कुछ ऐसे संत पुरुष हुए हैं जिन्होंने रूढ़िगत विचारों से अलग हटकर जैन धर्म की अपन विधा से प्रभावना की। यहां केवल उन्हीं संतों का उल्लेख अभिप्रेत है जो रूढ़िगत सूरि-मंत्र और अंजन-शलाका की विधियों को सम्पन्न कराने में तथा अपनी-अपनी समाज को रूढ़ियों में जकड़ देने में ही धर्म का सार नहीं समझते रहे वरन् जिन्होंने समाज को रूढ़ियों से बाहर निकालने तथा स्वतंत्र चिन्तन के लिए प्रेरित करने को अभीष्ट समझा। इन मनीषियों में रजनीश ओशो, कानजी स्वामी, दरबारीलाल 'सत्यभक्त', अमरमुनि, सुशीलमुनि, आचार्य तुलसी और क्षुल्लक मनोहरलाल वर्णी 'सहजानन्द' का उल्लेख किया जा सकता है।

रजनीश, कानजी स्वामी, दरबारीलाल और 'सहजानन्द' दिगम्बर आम्नाय से किसी-न-किसी प्रकार सम्बद्ध रहे। अमर मुनि, सुशील मुनि और आचार्य तुलसी श्वेताम्बर आम्नाय से सम्बद्ध रहे।

रजनीश और दरबारीलाल ने उच्चस्तरीय सामान्य शिक्षा प्राप्त की थी परन्तु अन्य सभी ने अपनी आम्नाय विषयक पारम्परिक शिक्षा ही प्राप्त की थी, तदपि वे भी आधुनिक प्रबुद्ध वातावरण से प्रभावित हुए थे और समय के अनुसार अपनी व्यवस्था को परिमार्जित एवं संस्कारित करने का प्रयत्न उन्होंने किया था।

रजनीश ने पुणे में अपना आश्रम स्थापित किया और यद्यपि वह जैन धर्म के सिद्धान्तों से सम्पृक्त थे, उन्होंने अपने को जैनत्व से बाहर एक नये मत के पुरस्कर्ता के रूप में प्रतिष्ठापित किया। धनिक वर्ग के युवक-युवतियों को उन्होंने विशेष रूप से आकर्षित किया और बहुत से विदेशी भी उनके भक्त बने। उनका विपुल साहित्य उनके विशद् ज्ञान और उसके सहज निरूपण के लिए विख्यात है। पुणे के उनके आश्रम ने एक विशेष प्रकार की प्रसिद्धि प्राप्त कर ली और उन्होंने एक नये मत का ही प्रवर्तन कर दिया। महिलाओं को समान अधिकार देने में उन्हें संकोच नहीं था और उनके आश्रम में प्रेमाश्री तथा अन्य साधिकाएं उसी प्रकार सम्मानित रहती थीं जैसे कि साधक पुरुष।

दरबारीलाल 'सत्यभक्त' ने वर्धा में अपना आश्रम स्थापित किया था। वह विधवा विवाह के समर्थक थे और उन्होंने सत्या नामक एक विधवा से स्वयं विवाह भी किया था जो अंत तक उनके साथ रहीं। समाज सुधार की दिशा में और धार्मिक सिद्धांतों के निरूपण में उनका दृष्टिकोण सुधारवादी एवं शोधात्मक था। इसको तत्कालीन दिगम्बर आम्नायी जैन समाज पचाने में समर्थ नहीं थी, अतः समाज द्वारा दरबारीलाल का बहिष्कार किया गया। परन्तु उन्होंने अपना आन्दोलन बंद नहीं किया और उसके लिए **सत्य समाज** की स्थापना की।

कानजी स्वामी मूलतः एक श्वेताम्बर साधु थे परन्तु कुन्दकुन्द के **समयसार** से प्रभावित होकर वह दिगम्बर आम्नाय के पोषक हो गये। उन्होंने यद्यपि साधुवेश धारण किये रखा परन्तु प्रतिमाधारी साधु होने की घोषणा नहीं की, विदित होती। उन्होंने अपना आश्रम सोनगढ़ में बनाया। चम्पा बेन उनकी मुख्य शिष्या रहीं।

अमरमुनि ने राजगिर में वीरायतन की स्थापना की। वह श्वेताम्बर स्थानकवासी साधु के रूप में प्रसिद्ध थे। अपने बाद उन्होंने साध्वी चन्दनाश्री को अपना उत्तराधिकारी आचार्य नामित किया।

सुशील मुनि भी मूलतः एक श्वेताम्बर स्थानकवासी साधु थे। परन्तु उन्होंनें साधु की चर्या को इस दृष्टि से संशोधित कर लिया कि वे विदेशों में भ्रमण कर सकें। संयुक्त राज्य अमरीका में उन्होंने विशेष रूप से जैन धर्म की प्रभावना की। दिल्ली में उन्होंने अपना आश्रम बनाया और उसके द्वारा जैन धर्म को एक विश्वस्तरीय प्रभावना का मंच प्रदान किया। उन्होंने डॉ. साध्वी साधना को अपना उत्तराधिकारी आचार्य नियुक्त किया।

आचार्य तुलसी ने लाडनूं में अपना केन्द्र स्थापित किया। वह श्वेताम्बर स्थानकवासी तेरापंथी साधु थे। अणुव्रत आन्दोलन के माध्यम से उन्होंने जैन धर्म को सार्वजनिक बनाने का एक प्रयोग किया। इस प्रयोग से उनके कुछ भक्तों को राजनीतिक लाभ अवश्य हुआ, जिसके कारण अपने अनुयायियों पर उनका शासन सुदृढ़ हो सका। उन भक्तों में असामाजिक तत्वों का भी प्रवेश हो गया था जिसकी जानकारी आचार्यश्री को भी थी। उनकी प्रसिद्ध प्रार्थना में एक पंक्ति है-

महावीर प्रभु के चरणों में
श्रद्धा के कुसुम चढ़ायें हम।

"सुमन" के बजाय "कुसुम" शब्द का प्रयोग एक प्रकार की शंका का अवसर प्रदान करता है। आचार्य तुलसी का कृतित्व आधुनिक युग में जैन धर्म को भारतीय राजनीतिक वातावरण से सम्बन्धित करने का एक प्रयास माना जा सकता है।

क्षुल्लक मनोहरलाल वर्णी 'सहजानन्द' का जन्म १६१५ ई. में झांसी जिले के दुमदुमा ग्राम में हुआ था। वह गोलालारे जाति के थे। इनका जन्म का नाम मदनलाल था। प्राइमरी स्कूल की शिक्षा के बाद इन्होंने श्री गणेश जैन विद्यालय, सागर, से न्यायतीर्थ की परीक्षा पास की और वहीं इनका नाम प्रकृति से भद्र दिखने के कारण "मनोहरलाल" पड़ गया। पत्नी का वियोग होने पर यह संसार से विरक्त हो गये और १६४६ ई. में श्री गणेशप्रसाद वर्णी द्वारा क्षुल्लक के रूप में दीक्षित हो गये। तत्पश्चात् वह 'सहजानन्द महाराज' और 'छोटे वर्णी जी' के नाम से भी पुकारे जाने लगे। इनका केन्द्र विशेषतः मेरठ-मुजफ्फरनगर क्षेत्र रहा। १६५२ में **वर्णी प्रवचन** के नाम से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया गया जो मुजफ्फरनगर से अभी भी प्रकाशित होती है और उसके संपादक श्री सुमेरचंद जैन हैं। ३० मार्च, १६७८ ई., को मेरठ में उन्होंने देह त्याग किया था। वह शुद्ध आध्यात्मिक चिन्तन-प्रवचन में अपने को निरत रखते थे। प्रवचन के लिए भ्रमण हेतु उन्हें आकाश मार्ग से भी जाने में संकोच नहीं होता था। जब वे लखनऊ आते थे तो हमारे पिता जी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन से वह अवश्य भेंट करते थे और अपनी शंकाओं का समाधान करते थे, परन्तु मुझे उनसे साक्षात् वार्ता करने का सुयोग प्राप्त नहीं हुआ। उनके साहित्य को जितना मैंने देखा है उससे उनके गहन अध्ययन की तो प्रतीति होती है परन्तु वह बहुत कुछ छायावादी शैली का है। वैराग्य का एकरूप नैराशय में प्रकट होता है जो मनुष्य को जीवन संघर्ष के लिए बल प्रदान नहीं करता वरन् एक प्रकार के पलायनवाद को प्रश्रय देता है। यह 'सहजानन्द' जी के चिन्तन का एक ऐसा पक्ष था जिसने बहुत से भक्तों को विमोहित तो किया परन्तु कोई व्यावहारिक उपलब्धि नहीं दे सका। इसमें उनका कोई दोष नहीं था क्योंकि उनकी शिक्षा-दीक्षा एक परिवेश के भीतर रह कर सम्पन्न हुई थी। तदपि उन्होंने चर्या में कुछ स्वतंत्रता बरती थी और उस स्वतंत्रता के कारण ही वह जैन संतों की आधुनिक कोटि में रखे जाने के लिए अर्ह हैं। 'सहजानन्द' जी के प्रति हमारा भी श्रद्धापूर्वक नमन है क्योंकि उन्होंने लीक से कुछ हटकर अपने विवेक और स्वतंत्र बुद्धि से चर्या को सुधारने का प्रयत्न किया था ताकि वह ~~अपने संदेश को~~ सुगमतापूर्वक अधिकांश लोगों तक पहुंचा सकें।

सर्वोदय तीर्थ के नाम पर

– श्री जमनालाल जैन

आचार्य समन्तभद्र ने वीर के शासन को सर्वोदयतीर्थ कहा है, जिस तीर्थ में सबके उदय की संभावना हो वह सर्वोदय-का तीर्थ, वीर का शासन वह जो वीर ने कहा, इस तरह हम कह सकते हैं कि वीर ने जो कुछ कहा है वह सबके उदय के लिये कहा और उनका कहना इतना साफ स्पष्ट और यथार्थ था कि उसे तीर्थ कहा गया है।

वीर ने किसी धर्म विशेष की स्थापना की हो ऐसा नहीं लगता। उन्होंने किसी ग्रंथ को या परम्परा को प्रमाण मानकर कुछ कहा है ऐसा भी नहीं लगता। उन्होंने जो कुछ कहा है वह अपने अनुभव से कहा है, जनता से कहा है और जनता की भाषा में कहा है। जिस तरह आज के विद्वान आगम-प्रमाण और वेद-प्रमाण की दुहाई देकर अपने वचनों की सत्यता पर प्रामाणिकता की मोहर लगाना चाहते हैं वैसा उन्होंने कुछ नहीं किया। ऐसा करके आज के विद्वान तो अपनी सत्यता और विद्वता को प्रायः संदिग्धता की कोटि में रख रहे हैं। उन्हें शायद अपने वचनों पर, अनुभवों पर स्वयं ही इतना विश्वास नहीं कि वे जो कुछ कह रहे हैं वह पूर्णतः ठीक है। महावीर के आगे वेद मौजूद था, वे उसके पाठी थे, उसका उन्हें अच्छा ज्ञान था। पर उन्होंने उसका कहीं जिक्र नहीं किया, किसी शास्त्र का भी उल्लेख नहीं किया। उन्होंने प्राचीन शब्दों के अर्थों को अपने अनुभव से नया रूप दिया और उनकी वाणी में इतना बल था कि जनता ने उसे स्वीकार भी किया। इतना ही क्यों, स्वामी रामतीर्थ ने स्वयं कहा कि वे स्वयं जिन्दा वेद हैं मुर्दा वेद की तरफ क्यों देखा जाय।

धर्म में देखा-देखी खूब चलती है, पहले भी चली है, आज भी चल रही है। हिंदुओं ने अपने यहां अवतार माने तो बौद्धों ने अपने यहां तथागत माने और जैनों ने तीर्थंकर मान लिये। मैं यहां नये और पुराने के झमेले में नहीं पड़ना चाहता, इस सर्वोदय को ही ले लीजिये, यह ठीक कि समन्तभद्र ने दो हजार बरस पहले यह शब्द प्रयुक्त किया, पर आज इसकी पूछ क्यों हो रही है ? कारण स्पष्ट है कि रस्किन के इस शब्द को गांधीजी ने राष्ट्रव्यापी महत्व दिया और अब सर्वोदय समाज स्थापित हो गया, जैनों ने अपने दबे शब्द को उठाने का यह अच्छा मौका देखा और उसके विविध उपाय होने लगे। अचरज तो यह है कि इस सीधे-सादे शब्द को इतिहास की नज़रों से देखा जाने लगा और इसके लिये शक्ति लगाई जाने लगी कि इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया। हम इस तरह उस शब्द की बाहरी चीर-फाड़ में लग

गये और भावना से दूर पड़ गये। हमें यह जानने की शायद चिन्ता नहीं कि उस शब्द का मूल अर्थ क्या है और किसने किस अर्थ में उसका प्रयोग किया है। ऐसी ही शोध-खोज हम सदा करते रहे हैं। जैन बड़े खुश हैं, यह सिद्ध करने में कि सारे तीर्थंकर उन्हीं के यहां हुए हैं, वे उनकी अपनी थाथी हैं। और वे हुए इसलिए हैं कि जब जब समाज में बुराइयां फैल गई हैं, पापाचार बढ़ गया है, तब तब उसे दूर कर दिया जाय। चौबीस बार तीर्थंकर हुए और हर बार उन्होंने समाज में से बुराई को दूर करने का प्रयत्न किया। पर हर बार गन्दगी बढ़ती गयी और तीर्थंकर भी पैदा होते गए। अगर ऐसा ही हमारा समाज है कि कितना ही उपदेश देने पर भी बुराई और पापाचार समाप्त नहीं हो सकता तो इससे अधिक शर्म की बात और क्या हो सकती है ? स्कूल में एक लड़का वह होता है जो अध्यापक की बात को एक बार के कहने पर समझ जाता है और फिर कोई भूल नहीं करता, अपना काम बराबर करता जाता है, और एक वह होता है जो बारबार कहने या मारने पर भी नहीं समझता और समझता भी है तो उतनी ही देर के लिये जितनी देर अध्यापक उपस्थित रहता है। इससे स्पष्ट है कि दोनों में दूसरा लड़का मूर्ख है, नालायक है। यही हाल उन धर्मात्माओं का समझिए जो अपनी शान में आकर कहते हैं कि सारे अवतार, सारे तीर्थंकर या सारे बुद्ध हमारे यहीं हुए हैं। इस देखा-देखी ने ही धर्म के असली रूप को नष्ट कर दिया है और उसका वह रूप रह गया है जिसको लेकर बुद्धि के दिवालिये प्रेत पर गिद्ध की तरह झपटते हैं।

महावीर जंगल में गये और आदमी के बच्चे से कहा कि प्रगति कर, उस सड़ाँध में से निकल जहां अहंता की बिना खिड़की की इमारत में खड़े-खड़े तेरा दम घुट रहा है। वीर ने तो घर ही क्या तन भी छोड़ा और अपना नाम भी मिटाकर चले गये। शरीर का एक कण भी पृथ्वी वालों के लिये नहीं छोड़ा क्योंकि उसको लेकर भी न जाने कितनी कल्पनाएं जोड़ी जा सकती थीं, लेकिन भक्त ही तो होते हैं अपने नेता की दुर्दशा करने वाले। महावीर का भी यही हाल हुआ। महावीर के नाम पर ऐसी ऐसी इमारतें खड़ी की गयीं जिनमें जाति-संप्रदाय आदि के कितने ही विभाग हो गये, पर हवा के खुलकर बहने के लिये खिड़की एक भी नहीं रखी गयी। सर्वोदय के हिमायती ही आज स्वार्थोदयी बन गये हैं। अगर आज कहीं फिर से महावीर का अवतरण हो जाय और वे देखें कि उनका नाम लेने वाले क्या-क्या करते हैं तो असंभव नहीं, वे उन सबको मिटा दें जो कुछ उन्होंने कहा था।

धर्म अपने आपमें बुरा नहीं होता, उसमें बुराई तो तब आती है जब उसे लोकोत्तर या आदमी की पहुंच के बाहर का बना दिया जाता है, और यह चीज बिना

अनुकरण के नहीं होती। महावीर के साथ भी प्रायः ऐसा ही हुआ है, वे आदमी ही नहीं रह गये। जब कि उन्होंने स्वयं बताया कि आदमी ही सारी शक्तियों का भंडार है। इतना ही नहीं कुछ लोग उन पर अपना अधिकार भी जमा बैठे कि अमुक वर्ग और श्रेणी के अतिरिक्त कोई दूसरा उनकी मूर्ति को स्पर्श भी नहीं कर सकता। यह इस महापुरुष का आदर है या अपमान? समन्तभद्र ने उनके धर्म को या उपदेश को सर्वोदयतीर्थ यों ही नहीं कहा था। आज की स्थिति में तो उसे जैनोदयतीर्थ भी नहीं कह सकते। जो सत्य दूसरे के छूने से असत्य बन जाता है या अपवित्र बन जाता है वह सत्य ही नहीं है, यह बात हमारे ध्यान में तब तक नहीं आ सकती जब तक हम यह न समझ लें कि आदमी-आदमी में व्यर्थ का भेदभाव खड़ा करना धर्म का उपहास करना है और अधर्म है।

धर्म की उन्नति को हमने संख्या से तोलना चाहा। धर्म को संख्या से कभी तोला नहीं जा सकता और जहां तोला जाता है वहां निश्चित समझिये कि धर्म का असली तत्त्व खतरे में होता है; पर इसमें भी सर्वोदयतीर्थ के अनुयायी असफल ही रहे-वे सब जाति-मर्यादा और कुलाचार में ही भटके रहे और जिसने जरा उनकी तथाकथित मर्यादा का भंग किया कि उन्होंने उसे जाति से बाहर कर दिया। जैन धर्म को मानने वाली अधिकांश जातियों का इतिहास यह स्पष्ट बोल रहा है कि जोड़ने और मिलाने का काम कभी हुआ ही नहीं, जो भी कुछ हुआ है वह तोड़ने और फेंकने का ही हुआ। अगर हमने सर्वोदय को समझा होता तो यह कैसे हो सकता था ? जिन्होंने समझा वे अलग पड़ गये और अलग ही खत्म हो गये। यह कैसी विडम्बना है कि जीवन्त महावीर के पास तो पशु-पक्षी तक पहुँच सकते थे, पर उनकी मूर्ति के पास बिना टिकट लिये आदमी भी नहीं पहुँच सकता।

कालेज का कोई विद्यार्थी प्रोफेसर से सीखते समय क्या यह समझ कर सीखता है कि प्रोफेसर का ज्ञान ही परिपूर्ण है और उसके आगे वह नहीं बढ़ सकेगा? मेरे ख्याल से कोई विद्यार्थी ऐसा नहीं हो सकता और जो ऐसा होगा वह कालेज में प्रविष्ट ही नहीं हो सकता। इसी तरह महावीर एक प्रोफेसर थे जिन्होंने एक रास्ता बताया और चले गये। अब इसका अर्थ यह तो नहीं कि जो कुछ उन्होंने बताया या वे परिस्थितियों के अनुरूप बता सके उतना ही परिपूर्ण है, उसमें कुछ फेरबदल नहीं हो सकता। जो तरीका उन्होंने बताया वह साफ था, बढ़िया था उसमें किसी प्रकार का आवरण और भेद नहीं था, वह प्रगतिशील था। हमारा काम था कि हम खुले मन से उस रास्ते पर बढ़ते, अपनी बुद्धि का उपयोग करते, प्रगति करते और उस चीज को प्राप्त करते जो आज के लिये सर्वोत्कृष्ट है। पर ऐसा हुआ कहां? हम तो उस

विद्यार्थी की तरह ही रहे जो यह मानता रहा कि उसके अध्यापक ने जो कुछ बताया उसके आगे उस के लिये कोई रास्ता नहीं है, वहीं उसकी सीमा है, महावीर को अपनी कमजोरी की सीमा में बांधकर हमने अपने भीतर बैठे भगवान का जो अपमान किया है वह हमें युगों तक अज्ञान के अंधकार में रखने के लिये पर्याप्त है। इससे महावीर का क्या बिगड़ा, बिगड़ा तो हमारा ही कि हम सुस्त पड़ गये, कोई प्रगति नहीं कर सके और ज्ञान की, सत्य की खोज में दुनिया की प्रगति में पिछड़ गये। महावीर तो एक विज्ञानी थे, अपने जीवन में जितना प्रयोग वे कर सके, कर गये और बता गये। उसे आगे बढ़ाना हमारा काम था पर हम निकले शब्दों से चिपकने वाले। और यही कारण है कि हम दूसरा महावीर दुनिया को अब तक नहीं दे सके, दे नहीं सकते। बहुत ही कुछ हुआ तो आज की वैज्ञानिक शोध-खोज और प्रगति की चर्चा चलने पर मोहवश इतना कहकर शान्त हो जाते हैं कि यह सारी प्रगति हमारे शास्त्रों की देन है, हमारे सिद्धांत में यह सब है। ये भोले भाई यह नहीं जानते कि किस विज्ञानी ने कौन-सी चीज दी है और वह इनका सिद्धांत पढ़ने कहां गया होगा और कौन इतना प्रगतिशील था जिसने अपना शास्त्र उसके हाथ में थमाया होगा। जैनों ने तो शास्त्रों को भी मूर्ति की तरह पूजा की वस्तु बनाया और उन्हें जनता तक लाने से इन्कार किया है।

मैं अधिक कुछ नहीं कहना चाहता, केवल इतना ही कहना चाहता हूं कि जिन लोगों ने महावीर को किसी कुंद और बेहवा की इमारत में बन्द कर दिया है और जो जाति, रूढ़ि तथा खानेपीने के कोरे आडम्बर में फंसे हुए हैं उनके हाथों न उनकी खैर है, न सर्वोदयतीर्थ की और न वे सर्वोदयतीर्थ के अनुयायी कहलाने के योग्य हैं। कौन ऐसा है जो मन्दिरों पर से ताले उठा दे, कौन है ऐसा जो मुँह पर से कपड़ा हटा दे, कौन है ऐसा जो अपराधी पर भी प्यार की निगाह रखे, कौन है ऐसा जो दूसरे को अधार्मिक कहना छोड़ दे और कौन है ऐसा जो अपने ही आचार-विचारों की बड़ाई करना छोड़ दे ? हमारी स्थिति उस रोगी जैसी है जो वैद्य के नुस्खे को तकिये के नीचे संवारकर रखता है, उसकी प्रशंसा करता है, उसे नमस्कार करता है, पर उसमें लिखी दवाइयों को मिला कर पी नहीं सकता। हम मंदिर में जाते हैं, मूर्ति के आगे माथा रगड़ते हैं, उसके गुणों का गान करते हैं, नाचते गाते हैं, पर बाहर आकर दुनियादारी के फरेब-भरे चक्कर में फंस जाते हैं और किसी के ताना मारने पर झट कह देते हैं कि 'क्या करें साहब, संसार में रहकर सच बोलना बड़ा कठिन हैं' और ताज्जुब तो यह होता है कि यह छल-फरेब धर्म के नाम पर भी चलता है और उसका बखान भी शान के साथ किया जाता हैं

असल में धर्म या तो ज्ञान की चीज है या बहादुरों की। दुर्भाग्य से वह पड़ गया है कायरों के हाथ में। कायर तो इसे अपनी दृष्टि से ही देखेगा और ग्रहण करेगा। कायर में होती है भय की भावना। भय एक ऐसा अस्त्र है जो उसे काबू में ला सकता है। जब धर्म कायर के पल्ले पड़ गया तब ज्ञानी को तो अपनी गुजर-बसर करनी ही थी और उसने अपना रास्ता कायर को और डराकर निकाल लिया। उसने स्वर्ग का सब्जबाग दिखाया और नरक की यातना का चित्र खड़ा किया। लोभ और भय के आधार पर धर्म का झंडा कायर के हाथ सौंप दिया। यह तो समन्तभद्र जैसे महान ज्ञानी ही कह सकते थे कि वे भगवान के अतिशय से प्रभावित नहीं हैं, कायर कहीं कह सकता है? वह नहीं कह सका, इसीलिये तो सैकड़ों तरह के चमत्कार और अतिशय उसकी आंखों में नाचने लगे और आज भी वह जो कुछ मन्दिर और धर्मालय में करता है वह केवल चमत्कार की ही तो पूजा करता है। एक ज्ञानी की दृष्टि से यह तो बच्चों का खेल ही समझिये। 'चमत्कार को नमस्कार' कहावत ही बन गयी है।

भय में सर्वोदयभावना नहीं रह सकती, सर्वोदयी भावना के लिये जिस निष्पृहता, स्पष्टता, प्रगतिशीलता और समताशीलता की जरूरत होती है वह कायर में कभी हो नहीं सकती। वह दया करता है तो उसे याद रखने के लिये, एहसान का पत्थर सिर पर पटककर उसकी दया क्षणमात्र में भयंकर बन सकती है। डरपोक तो वह इतना होता है कि कोई धमकी देकर उससे भिक्षा ले जाय, सरलता से वह कौड़ी नहीं देगा। सच यह है कि आज़ के समाज पर धर्म का भूत सवार है और यह भूत धर्म की आत्मा का भान नहीं होने देता और आगे भी नहीं बढ़ने देता।

मुझे शंका है कि आज की समाज के लिये सर्वोदय तीर्थ इस पृथ्वी में जीवित रह सकता है, वह तो स्वर्ग की तरह अचरज की चीज बन चुका। सर्वोदय का तीर्थ अगर इस धरा पर कहीं होता तो वह हर गांव के हर मंदिर में, हर जाति में, हर विचार में और हर प्रवृत्ति में होता।

मैं यह बात यों ही नहीं कह रहा हूं। इसके पीछे एक कारण और है। सर्वोदयतीर्थ का पुजारी प्रगतिशील होता है, कर्मठ होता है, वह काल और शाप से डरता नहीं। पर कौन ऐसी माई का लाल है जो ऐसा है ? मेरा कथन सर्वथा सत्य और दूसरे का सर्वथा झूठ कहने वाला तो सर्वोदय नहीं है। और हां एक बात कायर प्रतिवर्ष कहता है "आगे का जमाना बड़ा खराब है, इससे तो पिछला साल ही अच्छा था", एक फर्म की ४५ वर्ष की बहियों में प्रति वर्ष यह लिखा पाया गया। यह रोने की वृत्ति है, आलस और भाग्य की सहायक है। जो अपने-आप पर विश्वास नहीं

रख सकता वह दुनिया पर क्या रखेगा और जो दुनिया पर नहीं रखता वह अपने ऊपर भी नहीं रख सकता।

दुनिया सचाई की ओर भाग रही है। धर्म के ठेकेदार भले ही कहें कि अनीति बढ़ गई है, भ्रष्टाचार बढ़ गया है, और सबकी जबान पर झूठ खेल रहा है। हो सकता है वे सच कहते हों, पर यह भी तो सच है कि दुनिया धर्म से भाग रही है, धर्म में अगर सचाई हो तो धर्म से दुनिया भागे क्यों? विज्ञान सचाई है इसी से दुनिया उसे अपना रही है। विज्ञान की दौड़ में आज धर्म प्रायः पिछड़ गया है और अब वह संभवतः किसी भी हालत में उसे पकड़ नहीं सकेगा। बड़ा-से-बड़ा पूज्य और पवित्र समझा जाने वाला ग्रंथ उपदेश से भरा है। उस आदमी को उपदेश की क्या जरूरत जो शुरू से ही साफ, सच्चा और पवित्र हो। दवा की जरूरत रोगी को ही होती है। विज्ञान उपदेश नहीं देता, प्रयोग करता है और परिणाम प्रत्यक्ष दिखा देता है, सुनहले सपने नहीं दिखाता। धर्म की दुनिया प्रायः सपनों की दुनिया है और विज्ञान ने सपनों को बांधना शुरू कर दिया है और अभी नहीं किया है तो कर ही देने वाला है। सपनों की तरह ही अधिकांश धर्मों ने हमें मृगजल में भटकाया है। हमें उस धर्म से मुक्त होना चाहिए जो आदमी-आदमी में भेद करता है, पैसे-पैसे में भेद करता है, और मनुष्यता से गिराता है।

सर्वोदयी की विचारधारा किसी सीमा में, श्रद्धा में बंधकर नहीं चलनी चाहिए, उसमें विचार की स्वतन्त्रता, जीने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

'सर्वोदयतीर्थ' शब्द को प्रकाश में लाकर अगर उसके अनुरूप कुछ नहीं हो पाया तो, डर है कि कहीं रही-सही इज्जत भी जैनी न खो दें। 'सर्वोदय' चाहने वाले जब तक सबके लिये अपने द्वार उन्मुक्त नहीं करेंगे और सबको गले नहीं लगायेंगे तब तक उसकी सार्थकता कहाँ रहेगी? सबसे पहला काम तो यह होना चाहिए कि जितने भी मंदिर हैं वे सबके लिये योग्य व्यवस्था के साथ खुल जाने चाहिएं और त्याग की दृष्टि होनी चाहिए।

ऊपर की पंक्तियां विचार के लिये ही लिख गया हूँ, किसी पर उबलने और रोष प्रकट करने की नीयत से नहीं।

(अनेकान्त, वर्ष ११, किरण १ से साभार उद्धृत)

- अभय कुटीर, सारनाथ, वाराणसी

जैन, बौद्ध एवं हिन्दू धर्म ग्रन्थों में अयोध्या

- डॉ. (कु.) मालती जैन

अयोध्या प्राचीनकाल से ही ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व का नगर है। भौगोलिक दृष्टि से अयोध्या नगर २६. ४८ उत्तरी अक्षांश एवं ८२. १३ पूर्वी देशान्तर के मध्य वर्तमान फैजाबाद नगर से ५ मील पूर्व सरयू नदी के दाहिने तट पर बसा है। जैन, बौद्ध एवं हिन्दू तीनों धर्मावलम्बियों के लिए अयोध्या का एक विशिष्ट महत्व है। जैन पुराणों के अनुसार अयोध्या को प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के गर्भ और जन्म तथा तीर्थंकर अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ और अनंतनाथ के गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक की पुण्यस्थली होने का गौरव प्राप्त है। **उत्तरपुराण** (सर्ग ६८), रविषेणीय **पद्‌म पुराण** (सर्ग २०१-२), **हरिवंशपुराण** (सर्ग ६०) आदि ग्रन्थ इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं। उपर्युक्त तीर्थंकरों की पूजाओं में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख है।

जैन साहित्य में अयोध्या के अन्य नाम यथा—विनीता (**आदिपुराण,** पर्व १२), साकेत (**त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र**), कौशल या सुकौशला (**विविध तीर्थंकल्प,** पृ. २४), इक्ष्वाकु भूमि व रामाधुरी (**आवस्सक निर्ज्जुति,** पृ.८३) आदि भी प्रचलित थे।

आदिपुराण, भाग-१, के द्वादश पर्व में अयोध्या के विस्तृत रोचक वर्णन में अयोध्या के विविध नामों की सार्थकता पर प्रकाश डाला गया है। **आदिपुराण** में उल्लेख है कि मरुदेवी और नाभिराय से अलंकृत पवित्र स्थान में जब कल्पवृक्षों का अभाव हो गया तब वहाँ उनके पुण्य के द्वारा बार-बार बुलाये हुए इन्द्र ने अनेक उत्साही देवों के साथ बड़े आनन्द से स्वर्गपुरी के समान नगरी की रचना की, उस नगरी का नाम अयोध्या था। उस नगरी के मध्य भाग में देवों ने राजमहल बनाया था जो इन्द्रपुरी के साथ स्पर्द्धा करने वाला था और बहुमूल्य अनेक विभूतियों से सहित था। देवों ने उस नगरी को वप्र (धूलि के बने हुए छोटे कोट), प्राकार (चार मुख्य दरवाजों से सहित पत्थर के बने हुए मजबूत कोट) और पारिखा आदि से सुशोभित किया था। वह केवल नाम मात्र से ही अयोध्या नहीं थी किन्तु गुणों से भी अयोध्या थी। कोई भी शत्रु उससे युद्ध नहीं कर सकता था। (अरिभिः योद्धुं न शक्या-अयोध्या)।[1]

उस नगरी का दूसरा नाम साकेत (आकेतैः गृहैः सह वर्तमाना=साकेता, स+आकेता अर्थात् घरों से सहित) भी था क्योंकि वह अपने अच्छे-अच्छे मकानों से बड़ी ही प्रशंसनीय थी। उन मकानों पर पताकायें फहरा रहीं थीं जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों स्वर्ग लोक के मकानों को बुलाने के लिए अपनी पताका रूपी भुजाओं के द्वारा संकेत ही कर रहे हों।[२]

यह वर्णन अनायास ही राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' महाकाव्य (प्रथम सर्ग) की इन पंक्तियों का स्मरण करा देता है- "देख लो साकेत नगरी है यही स्वर्ग से मिलने गगन को जा रही"।

वह नगरी सुकौशल देश में थी इसलिए देश के नाम से 'सुकौशला' इस प्रसिद्धि को भी प्राप्त हुई थी। तथा वह नगरी अनेक विनीत शिक्षित विनयवान या सभ्य मनुष्यों से व्याप्त थी इसलिए वह 'विनीता' भी मानी गई थी— उसका एक नाम 'विनीता' (विनीता जनता कोणां विनीतेति च सा मता) भी था।[३]

तीर्थंकर ऋषभदेव के केवलज्ञान प्राप्ति पर उनका पूजन कर जब महाराज भरत भाइयों सहित अयोध्या वापस लौटते हैं आचार्य जिनसेन ने उस प्रसंग पर जिनवाणी के साथ अयोध्या का सटीक तुलनात्मक वर्णन नीचे उद्धृत शार्दूल विक्रीड़ित छन्द में किया है-

"स्वान्तर्नीतसमस्तवस्तुविसरां प्रास्तीर्णवर्णोज्जवलाम्
निर्णिक्तां नयचक्र सन्निधिगुरूं स्फीत प्रमोदाहृतिम्।
विश्वास्यां निखिलांगभृत्परिचितां जैनीमिव व्याहृतिं
प्राविक्षत्परया मुदा निधिपतिः स्वामुत्पताकां पुरीम्।"[४]

अर्थात् इस प्रकार निधियों के अधिपति महाराज भरत ने बड़े भारी आनन्द के साथ अपनी अयोध्यापुरी में प्रवेश किया था। उस समय उसमें अनेक ध्वजाएं फहरा रहीं थीं और वह ठीक जिनवाणी के समान सुशोभित हो रही थीं क्योंकि जिस प्रकार जिनवाणी के भीतर समस्त पदार्थों का विस्तार भरा रहता है, उसी प्रकार उस अयोध्या में अनेक पदार्थों का विस्तार भरा हुआ है। जिस प्रकार जिनवाणी फैले हुए वर्णों अर्थात् अक्षरों से उज्ज्वल रहती है उसी प्रकार वह अयोध्या भी फैले हुए-जगह-जगह बसे हुए क्षत्रिय आदि वर्णों से उज्ज्वल थी। जिस प्रकार जिनवाणी अत्यन्त शुचि रूप पवित्र होती है उसी प्रकार वह अयोध्या भी शुचिरूप-कर्दम आदि से रहित-

पवित्र थी। जिस प्रकार जिनवाणी समूह के सन्निधान से श्रेष्ठ होती हैं उसी प्रकार वह अयोध्या भी नीति समूह के सन्निधान से श्रेष्ठ थी। जिस प्रकार जिनवाणी विस्तृत आनंद को देने वाली होती है उसी प्रकार वह अयोध्या भी सबको विस्तृत आनंद देने वाली थी। जिस प्रकार जिनवाणी विश्वास्य अर्थात् विश्वास करने योग्य होती है अथवा सब और मुख वाली अर्थात् समस्त पदार्थों का निरूपण करने वाली होती है उसी प्रकार वह अयोध्या भी विश्वास करने योग्य अथवा सब ओर हैं आस्य अर्थात् मुख जिसके ऐसी थी- उसके चारों ओर गोपुर बने हुए थे, और जिस प्रकार जिनवाणी सभी अंग अर्थात् द्वादशांग को धारण करने वाले मुनियों के द्वारा परिचित- अभ्यस्त रहती है उसी प्रकार वह अयोध्या भी समस्त जीवों के द्वारा परिचित थी- उसमें प्रत्येक प्रकार के प्राणी रहते थे।

आचार्य जिनसेन ने अयोध्या नगरी को विविध रूपों में देखा है। **आदिपुराण,** भाग २, के चतुर्स्त्रिंशतम पर्व के प्रारंभ में कैलाश पर्वत से उतरकर भरत चक्रवर्ती के अयोध्या पहुँचने का वर्णन करते समय जिनसेन को उस नगरी का रूप सौन्दर्य पति के स्वागत में सुसज्जित और अलंकृत नायिका के सदृश दृष्टिगत हुआ और उन्होंने लिखा-

"चन्दनद्रवसंसिक्तसुसंमृष्ट महीतला। पुरी स्नातानुलिप्तेव सा रेजे पत्युरागमे।।"
जिसकी बुहार कर साफ की हुई पृथ्वी घिसे हुए गीले चंदन से सींची गई है, ऐसी वह अयोध्या नगरी उस समय इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो उसने पति के आने पर स्नान कर चंदन का लेप ही किया हो।[५]

जब चक्रवर्ती भरत का चक्ररत्न अयोध्या के बाहर ही रुक जाता है तब चक्ररत्न की किरणों से रंजित अयोध्या की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है

"सा पुरी गोपुरोपान्तस्थितचक्रांशुरंजिता।
घृतसंध्यातपेवासीत् कुंकुमापिञ्जरच्छविः।६।
सत्यं भरतराजोऽयं धौरेयश्चक्रिणामिति
घृतदिव्येव सा जज्ञे ज्वलच्चक्रा पुरः पुरी।७।"

गोपुर के समीप रुके हुए चक्र की किरणों से अनुरक्त होने के कारण जिसकी कांति कुंकुम के समान कुछ-कुछ पीली हो रही है, ऐसी वह नगरी इस प्रकार जान पड़ती थी मानो उसने संध्या की लालिमा ही धारण की हो। जिसके आगे चक्ररत्न देदीप्यमान हो रहा है, ऐसी वह नगरी उस समय ऐसी जान पड़ती थी मानो यह भरतराज सचमुच

ही सब चक्रवर्तियों में मुख्य है, अपनी इस बात की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए उसने तप्त अयोगोलक आदि को ही धारण किया हो।[६]

बौद्ध साहित्य में अयोध्या : बौद्ध साहित्य में भी अयोध्या का विवरण मिलता है। इसका एक नाम 'कौशलापुरी' भी है। गौतम बुद्ध का अयोध्या से सम्बन्ध बताते हुए **'मज्झिमनिकाय'** (भाग २, पृ. १२४) में उन्हें 'कौसलक' कहा है। उल्लेखनीय तथ्य है कि चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी गंगा नदी पार कर अयोध्या में प्रवेश किया था।[७] अयुज्झा (अयुज्झ नगर) में अरिन्दक तथा उसके उत्तराधिकारियों ने राज्य किया था।[८]

वाल्मीकि रामायण में वर्णन : आदि कवि बाल्मीकि ने भी अपनी **रामायण** के पंचम एवं षष्ठ सर्गों में अयोध्या नगरी के वैभव एवं अयोध्यावासियों के उदात्त चरित्र का विस्तृत वर्णन किया है यथा-

''कोसलो नाम विदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान।।
अयोध्या नाम तत्रास्ति नगरी लोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण पुरैव-निर्मिता स्वयं।।'' (पंचम सर्ग)

अयोध्या नाम की सार्थकता की ओर इंगित करते हुए कवि ने लिखा है-

''तां सत्यनामां छदतोरणार्गलां।
गृहे विचित्रै रूप शोभितां शिवाम्।।
पुरी अयोध्यां न सहस्र संकुलां
शसास ते शक्रसमो महीपतिः।।'' (षष्ठ सर्ग)

अर्थात् जिसका अयोध्या नाम सत्य एवं सार्थक था, जिसके दरवाजे और अर्गला सुदृढ़ थे, जो विचित्र गृहों से सदा सुशोभित होती थी; सहस्रों मनुष्यों से भरी हुई उस कल्याणमयी पुरी का इन्द्र तुल्य तेजस्वी राजा दशरथ न्याय पूर्वक शासन करते थे।

उपसंहार :

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जैन, बौद्ध एवं हिन्दू सभी धर्मावलम्बियों के लिए अयोध्या का धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व है। सभी की दृष्टि में यह नगरी अपार वैभव सम्पन्न रही है। इस नगरी की संरचना सुदृढ़ एवं दुर्जेय होने के कारण इसका अयोध्या नाम सार्थक है। तुलनात्मक दृष्टिकोण से कतिपय तथ्य विचारणीय हैं।

१. **आदिपुराण** में अयोध्या को जितने नामों से अभिहित किया गया है तथा उन नामों की सार्थकता सिद्ध की गई है, बौद्ध साहित्य एवं **बाल्मीकि रामायण** में अयोध्या के उतने नामों का उल्लेख नहीं है।

२. आदि कवि वाल्मीकि एवं आचार्य जिनसेन दोनों ने अयोध्या के वैभव का वर्णन विस्तार पूर्वक किया है। दोनों के अयोध्या वर्णन में एक प्रमुख अंतर यह है कि वाल्मीकि का अयोध्या वर्णन जहां केवल राजसी है, वहीं आचार्य जिनसेन की अयोध्या में धार्मिकता और आध्यामिकता का भी पुट है। जिनवाणी के साथ अयोध्या की तुलना का प्रसंग इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है। वर्णन में धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता यह माणिकांचन योग **आदिपुराण** के अयोध्या वर्णन की उल्लेखनीय विशेषता है।

देवताओं द्वारा निर्मित भगवान आदिनाथ की पावन नगरी अयोध्या भारतीय इतिहास के एक विस्तृत कालखण्ड को अपने आँचल में समेटे है। इस नगरी ने भगवान आदिनाथ, अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ और अनंतनाथ के जन्म कल्याणकों की अद्भुत शोभा को तो निहारा ही है, शलाका पुरुष राम का तोतला बचपन भी इसी नगरी की धूलि में लिपटा है, अहिंसा के पुजारी गौतमबुद्ध के बिहार से भी यह नगरी पवित्र हुई है।

प्राचीन इतिहास, पुराण एवं साहित्य के विस्तृत चित्रफलक पर तो शाश्वत तीर्थ अयोध्या के अपार वैभव के चटक रंग बिखरे ही हैं, अयोध्या का वर्तमान स्वरूप भी गरिमा मण्डित और चित्ताकर्षक है। कथ्य प्रचलित है कि जिस भूमि पर संतों के चरण पड़ते हैं, उसका कण-कण स्वयं तीर्थ बन जाता है। **अयोध्या के वर्तमान स्वरूप पर** यह कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध होता है। पूज्य आचार्य देशभूषण महाराज के सौजन्य से स्थापित तीर्थंकर आदिनाथ की १५ फुट उत्तुंग विशाल भव्य मूर्ति यदि दर्शनार्थियों को जीने की कला सिखाती है तो परम पूज्य आर्यिकारत्न गणिनी ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से त्रिकाल चौबीसी एवं समवशरण की रचना तीर्थयात्रियों को विस्मय विमुग्ध कर देती है। पाँचों टोंकों का नवनिर्माण, सुरम्य उपवन में स्थापित भगवान ऋषभदेव की पद्मासन श्वेतवर्णी प्रतिमा यात्रियों का ध्यान अनायास ही आकृष्ट कर लेती है। अयोध्या का वर्तमान स्वरूप भी इस नगरी को कुबेर की दिव्य रचना ही प्रमाणित करता है।

वर्तमान युग में 'बाबरी मस्जिद प्रसंग' ने इसे समस्त विश्व में चर्चित बना दिया है। 'भगवान आदिनाथ की जय', 'रामलला की जय', 'बुद्धं शरणं गच्छामि' के उद्घोष और 'अल्लाह ओ अकबर' की अजान से गुंजित यह परम पुनीत अयोध्या नगरी सर्वधर्म समभाव का सुन्दर उदाहरण है।

अयोध्या के इतिहास, पुरातत्व सांस्कृतिक महत्व एवं साहित्यिक वर्णन आदि विविध विषयों का सांगोपांग विशद विवेचन इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की कृति **'आदितीर्थ अयोध्या'**, जो १६७६ में उत्तर प्रदेश दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, लखनऊ,से प्रकाशित हुई थी, में दृष्टव्य है।

सन्दर्भ :

१. **आदिपुराण,** द्वादश पर्व, ७६; २. वही, ७७; ३. वही, ७८; ४. **आदिपुराण,** चतुर्विंशतितमं पर्व, १८६; ५. वही, चतुस्त्रिंशत्तम पर्व, ४; ६. वही, ६-७; ७. **वाटर्सः युवान च्वांग्स ट्रेवल्स इन इंडिया,** भाग २१, पृ. ३५४; ८. डॉ. विमल चरण लाहाः **इण्डोलाजिकल स्टडीज,** भाग ३, पृ. २३।

- १४६, कटरा, मैनपुरी (उ. प्र.)

महावीर पुरस्कार वर्ष २००७ एवं ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार २००७

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित जैन विद्या संस्थान, श्री महावीरजी के **वर्ष-२००७ के महावीर पुरस्कार** के लिए जैनधर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि से संबंधित किसी भी विषय की पुस्तक/शोध प्रबन्ध की चार प्रतियां दिनांक **३० सितम्बर २००७** तक आमन्त्रित हैं। इस पुरस्कार में प्रथम स्थान प्राप्त कृति को रु.२१००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा तथा द्वितीय स्थान प्राप्त कृति को **ब्र. पूरणचन्द्र रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार** रु. ५००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा।

नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिए संस्थान कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-४ से पत्र व्यवहार करें।

- डॉ. कमलचन्द सोगाणी, संयोजक

भिक्षा-विचार : जैन तथा वैदिक दृष्टि से
('उञ्छ' शब्द के संदर्भ में)

- डॉ. अनीता बोथरा

भांडारकर प्राच्यविद्या संस्था में प्राकृत महाशब्दकोश के लिए विविध शब्दों की खोज करते हुए भिक्षावाचक बहुत सारे शब्द सामने आये। **आचारांग, सूत्रकृतांग** जैसे अर्धमागधी ग्रंथों में, **औपदेशिक** जैन महाराष्ट्री साहित्य में, **मूलाचार, भगवती आराधना** जैसे जैन शौरसेनी ग्रंथों में तथा अपभ्रंश के पुराण और चरित ग्रंथों में भिक्षाचर्या के लिए **उंछवित्ति, पिंडेसणा, एसणा, भिक्खायरिया, भिक्खावित्ति, गोयरी, गोयरचरिआ** तथा **महुकारसमावित्ति** आदि शब्दों का प्रयोग किया हुआ दिखाई दिया। वैदिक परंपरा के श्रुति, स्मृति तथा पुराण ग्रंथों में **उञ्छवृत्ति, भिक्षाचर्या, भिक्षावृत्ति** तथा **माधुकरी** ये चार शब्द भिक्षाचर्या के लिए उपयोजित किये हुए दिखाई दिये। **उंछ** तथा **उंछवृत्ति** इन शब्दों पर ध्यान केंद्रित करके दोनों परंपराओं के प्रमुख तथा प्रातिनिधिक ग्रंथों में इस विषय की विशेष खोज की।

भारतीय संस्कृति कोश में वैशेषिक दर्शन के सूत्रकर्ता 'कणाद' के बारे में जानकारी मिलती है कि महर्षि कणाद खेत में गिरे हुए धान्यकण इकट्ठा करके जीवन निर्वाह करते थे, इसलिए वे **कणाद, कणभक्ष** तथा **कणभुज्** इन नामों से पहचाने जाते थे। **वैशेषिक सूत्र** की **'न्यायकंदली'** व्याख्या में यह स्पष्ट किया है (न्यायकंदली पृष्ठ ४)। **'कणाद'** शब्द के स्पष्टीकरण से **उञ्छवृत्ति** का संकेत मिलता है।

जैन प्राकृत साहित्य

जैन प्राकृत साहित्य में कौन-कौन से ग्रंथों में कौन-कौन से अर्थों में तथा कौन-कौन से संदर्भ में उंछ या उंछ शब्द के समास प्रयुक्त हुए हैं, इसकी सूक्ष्मता से जांच की। निम्नलिखित प्राकृत ग्रंथों से उंछ संबंधी संदर्भ प्राप्त हुए :-

अर्धमागधी ग्रंथ

आचारांग में पाया गया एक ही संदर्भ विशेष महत्वपूर्ण है। **सूत्रकृतांग** और **स्थानांग** में अल्पमात्रा में संदर्भ दिखाई दिये। **प्रश्नव्याकरण** की टीका का उंछ शब्द का स्पष्टीकरण बहुत ही महत्वपूर्ण लगा। **उत्तराध्ययन** में 'उंछ की एषणा' इस प्रकार का संदर्भ पाया। पिंडेषणा या भिक्षाचर्या **दशवैकालिक** का महत्वपूर्ण विषय होने के

कारण उसमें उंछ शब्द अनेक बार दिखाई दिया है। **ओघनिर्युक्ति** में उंछवृत्ति के अतिचारों का संदर्भ मिला।

जैन महाराष्ट्री ग्रंथ

आवश्यकनिर्युक्ति, ओघनिर्युक्तिभाष्य, निशीथचूर्णि, वसुदेवहिंडी, उपदेशपद, जंबुचरिय, कथाकोशप्रकरण, ज्ञानपंचमीकथा तथा **अन्नायउंछकुलकम्** इन जैन महाराष्ट्री ग्रंथों में उंछ संबंधी उल्लेख उपलब्ध हुए।

जैन शौरसेनी तथा अपभ्रंश ग्रंथों में 'उंछ' शब्द की खोज की। दोनों की उपलब्ध शब्दसूचियों में यह शब्द नहीं है। इन दोनों भाषाओं में प्रायः दिगंबर आचार्यों ने ही अपनी साहित्यिक गतिविधियां प्रस्तुत की हैं। हो सकता है कि उंछ शब्द से जुड़ी हुई वैदिक धारणाएं ध्यान में रखते हुए उन्होंने उंछ शब्द का प्रयोग हेतुपुरस्सर टाला होगा। उंछ शब्द से जुड़े हुए अप्रासुक, सचित्त वनस्पतियों के (धान्य के) संदर्भ ध्यान में रखते हुए आचार कठोरता का पालन करने वाले दिगंबर आचार्यों ने भिक्षावाचक अन्य शब्दों का प्रयोग किया लेकिन उंछवृत्ति का निर्देश नहीं किया।

वैदिक साहित्य

वैदिक साहित्य में लगभग १०० ग्रंथों में उञ्छ तथा उञ्छ के समास पाये गये। तथापि प्राचीनता तथा अर्थपूर्णता ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित ग्रंथों में से सामग्री का चयन किया। चयन करते हुए यह बात भी ध्यान में आयी कि **ऋग्वेद** आदि चार वेदों, **ब्राह्मण, आरण्यक** तथा **उपनिषद** इन ग्रंथों में उञ्छ शब्द का कोई भी प्रयोग दिखाई नहीं दिया। उञ्छ तथा उञ्छ के समास **महाभारत** के सभापर्व, आश्वमेधिकपर्व तथा शांति पर्व आदि पर्वों में विपुल मात्रा में उपलब्ध हुए। **कौटिलीय अर्थशास्त्र** में दो अलग-अलग अर्थों में यह शब्द पाया गया। **मनुस्मृति** में उञ्छवृत्ति के बारे में काफी चर्चा की गई है। **भागवद्पुराण** तथा **ब्रह्माणपुराण** में अत्यल्प मात्रा में प्रयोग उपलब्ध हुए। पुराणों में से **शिवपुराण** में सर्वाधिक संदर्भ दिखाई दिये।

दोनों परंपराओं से प्राप्त इन संदर्भों का सूक्ष्मरीति से निरीक्षण यहां प्रस्तुत किया है। वैदिक परंपरा में 'उञ्छ' शब्द का प्रयोग धातु (क्रियापद) तथा नाम दोनों में प्रयुक्त है। **धातुपाठ** में यह उपलब्ध है।[१] उञ्छक्रिया का अर्थ 'धान्य कण के स्वरूप में इकट्ठा करना' (to gather, to collect, to glean) इस प्रकार है।[२] **यशस्तिलकचंम्पू** में 'उञ्छति चुण्टयति' (to pluck) इस अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग है।[३] 'उञ्छ' क्रिया

का संबंध वैयाकरणों ने 'ईष्' क्रियापद से जोड़ा है।[४] 'उञ्छन' क्रिया से प्राप्त जो भी धान्य कण हैं उस समूह को 'उञ्छ' कहा गया है।

जैन परंपरा के प्राकृत ग्रंथों में उंछ क्रिया का 'क्रिया स्वरूप' में प्रयोग अत्यल्प मात्रा में दिखाई दिया। जो भी संदर्भ पाए गये वे सभी 'नाम' ही हैं। कहीं भी धान्य कण अथवा पत्र-पुष्प आदि का जिक्र नहीं किया है। 'भिक्षु द्वारा एकत्रित की गई साधु प्रायोग्य भिक्षा', इस अर्थ में ही इस शब्द का प्रयोग किया गया है।

वैदिक परंपरा के ग्रंथों में से उपलब्ध संदर्भों का चयन करने से 'उञ्छ' का जो एक समग्र चित्र सामने उभरकर आता है वह इस प्रकार है। **चान्द्र व्याकरण** में उञ्छ क्रिया का प्रयोग 'इकट्टा करना' इस सामान्य अर्थ में है। यहाँ कहा गया है कि बेरों को चुनने वाला बदरिक कहलाता है।[५] **कौटिलीय अर्थशास्त्र** में कहा है कि उञ्छजीवि आरण्यक, राजा को कररूप में उञ्छषड्भाग अर्पित करते हैं। यहां भी सिर्फ इकट्टा करना अर्थ ही है।[६] **रामायण** में यद्यपि उञ्छवृत्ति के संदर्भ अत्यल्प हैं तथापि इस व्रत की दुष्करता उसमें अधोरेखित की गई है।[७] उञ्छवृत्ति का आचरण करने वाले को 'उञ्छशील' कहते हैं।[८] लेकिन 'उञ्छशिल' ऐसा भी शब्द प्रयोग देखा जाता है।[९] 'उञ्छ' का मतलब है मार्ग में या खेत में गिरे हुए धान्य कण इकट्टा करना और 'शिल' का अर्थ है धान्य के भुट्टे इकट्ठे करना। इन दोनों को मिलकर 'ऋत' संज्ञा दी है।[१०] उञ्छजीविका,[११] उञ्छजीविकासम्पन्न,[१२] उञ्छधर्मन्,[१३] उञ्छवृत्ति[१४] आदि शब्द प्रयोग उन लोगों के बारे में आये हैं जिन्होंने धान्य कण इकट्ठा करके उन पर उपजीविका करने का व्रत स्वीकार किया है।

उञ्छवृत्ति व्रत विप्र,[१५] ब्राह्मण[१६] तथा गृहस्थ[१७] स्वीकार करते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि गृहस्थाश्रमी लोग यह व्रत धारण करते थे। **आश्वमेधिकपर्व** में एक विप्र की पत्नी, पुत्र तथा पुत्रवधु के द्वारा भी यह व्रत ग्रहण करने का उल्लेख है।[१८] मुनि[१९] तथा तापस[२०] भी इस व्रत को ग्रहण करते थे। अर्थात् वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम में भी उञ्छवृत्ति के द्वारा उपजीविका करने का प्रचलन था।

उंञ्छव्रत में धान्य कण या धान्य बीज खेतों से इकट्ठा करते थे।[२१] जो धान्य कण या बीज भुट्टों से खेत में पड़कर गिरे हुए हैं वे एक-एक करके चुने जाते थे।[२२] इस

व्रत के धारक लोग पतित तथा परित्यक्त धान्य कण भी इकट्ठा करते थे।[२३] इसके लिए क्षेत्र स्वामी की अनुमति नहीं मानी गई थी।[२४] खलिहान में बचे हुए धान्यकण भी लेने की विधि दी है।[२५] धान जब खेत से बाजार तक ले जाया जाता है तब भी बहुत से धान्यकण गिरते हैं। इसलिए रास्ते से बाजार से भी इकट्ठे किये जा सकते थे।[२६] एक जगह से कितने धान्य कण इकट्ठे किये जायें इसका भी प्रमाण निश्चित किया है। एक-एक धान्य कण चुनके एक जगह से एक मुट्ठी धान्य ही इकट्ठा किया जाता था। इसके लिए कुंताग्र,[२७] गुटक[२८] इन शब्दों का प्रयोग किया गया है, अनेक जगहों से अल्पमात्रा में उञ्छग्रहण करने का विधान है।[२९] इसका कारण यह है कि किसी को भी इस ग्रहण से पीड़ा न हो।[३०] **चरक संहिता** में शोधनी से धान्यकण इकट्ठे करने का उल्लेख हे।[३१] उञ्छवृत्ति से इकट्टे किये धान्य का पिष्ठ बनाया जा सकता था तथा पानी में मिलाकर कांजी वगैरह बनाई जाती थी।[३२] रसास्वाद के लिए उसमें नमक आदि चीजें मिलाने का कहीं उल्लेख नहीं है। इसलिए उञ्छवृत्ति के लोग नीरस आहार का ही सेवन अल्पमात्रा में करते थे ऐसा प्रतीत होता है। **शिवपुराण** में उञ्छ से अर्जित द्रव्य का भी उल्लेख वैशिष्टपूर्ण हैं। उस द्रव्यको शुद्ध द्रव्य कहा है। शुद्ध द्रव्य का दान देने से हुई पुण्यप्राप्ति का भी वहां जिक्र किया है।[३३]

उञ्छवृत्ति से रहने वाले लोगों के लिए खग[३४] तथा कबूतर[३५] की उपमा भी प्रयुक्त की है उञ्छशीलवृत्ति को 'कापोतव्रत' भी कहा है।[३६] जो मुनि या तापस खेती-बाड़ी से दूर अरण्यों में निवास करते थे वे आरण्य से निसर्गतः प्राप्त फल, कंद, मूल, पत्ते आदि पर भी उपजीविका करते थे। उन्हें भी उञ्छजीवि कहा है।[३७]

महाभारत के **सभापर्व** में उञ्छवृत्तिधारी चार राजाओं का निर्देश है। उनके नाम हैं-हरिश्चंद्र, रन्तिदेव, शिबि और बलि।[३८] **आश्वमेधिक पर्व** तथा **शांतिपर्व** में दो बड़े-बड़े बहुत विस्तृत उपाख्यान आये हैं, उनका नाम ही 'उञ्छवृत्तिउपाख्यान' है। उञ्छवृत्ति से अर्जित उपजीविका साधनों का अगर दान दिया तो व्रतधारी को अनशन ही होता है। उसका फल यज्ञ से भी अधिक कहा है। स्वर्गप्राप्ति भी कही है।

नमूने के तौर पर वैदिक परंपरा के ये जो उल्लेख दिये हैं उससे सिद्ध होता है कि 'व्रत के स्वरूप वैदिक परंपरा में' इस विधि का प्रचलन अत्यधिक था। लेकिन उसका स्वरूप पहले देखेंगे और बाद में शोध निबंध के निष्कर्ष तक जायेंगे।

प्राकृत साहित्य में कालक्रम से तथा भाषाक्रम से कौन-कौन से ग्रंथों में 'उंछ' शब्द का प्रयोग हुआ है और किस अर्थ में हुआ है तथा व्याख्या, टीका आदि में उनका स्पष्टीकरण किस तरह दिया गया है यह प्रथम देखेंगे।

जैन परंपरा में भी उंछ शब्द का प्रयोग तो पाया जाता है। **आचारांग** अंग आगम के दूसरे श्रुतस्तंध में 'उंछ' शब्द का प्रयोग केवल भिक्षा से संबंधित न होकर भिक्षा के साथ-साथ **छादन, लयन, संथार, द्वार, पिधान** और **पिंडपात** इनसे जुड़ा हुआ है। इधर केवल यह अर्थ निहित है कि उपर्युक्त सब चीजें साधु प्रायोग्य और प्रासुक होना आवश्यक हैं। टीकाकार अभयदेव ने कहा है कि- 'उंछं इति छादनाद्युक्तरगुणदोषरहितः'।[३९]

सूत्रकृतांग के पहले श्रुतस्कंध में 'उंछ' शब्द का अर्थ 'बयालीस दोषों से रहित आहार ग्रहण करना' ऐसा दिया है।[४०] शीलंकाचार्य ने **सूत्रकृतांग** १.७.२७ की वृत्ति में 'अज्ञातपिंड' का अर्थ अंतप्रांत (बासी) तथा पूर्वापर अपरिचितों का पिंड, इस प्रकार का स्पष्टीकरण किया है।

सूत्रकृतांग की चूर्णि में 'उंछ' के द्रव्यउंछ (नीरस पदार्थ) और भावउंछ (अज्ञात चर्या) ऐसे दो भेद किये हैं।[४१] वृत्तिकार ने इसका अर्थ-भिक्षा से प्राप्त वस्तु ऐसा किया है।

स्थानांगसूत्र में उंछजीविकासंपन्न और जैन सिद्धांतों के प्रज्ञापक साधु का निर्देश है।[४२]

प्रश्नव्याकरण के संवरद्वार के पहले अध्ययन में अहिंसा एक पंचभावना पद के अंतर्गत आये हुए 'आहारएसणाए सुद्धं उंछं गवेसियव्वं'[४३] इस पद से यह कहा है कि साधु शुद्ध, निर्दोष तथा अल्पप्रमाण में आहार की गवेषणा करे।

प्रश्नव्याकरण के टीकाकार ने उंछगवेषणा शब्द पर विशेष प्रकाश डाला है। कहा है कि, 'उञ्छो गवेषणीय इति संबंधः, किमर्थमत आहपृथिव्युदकाग्निमारुततरुगणत्रसस्थावर सर्वभूतेषु विषये या संयमदया-संयमात्मिका घृणा न तु मिथ्यादृशामिव बन्धात्मिका तदर्थं-तद्धेतो-शुद्धः-अनवद्यः उञ्छोभैक्ष्यं गवेषयितव्यः'।[४४]

इससे स्पष्ट होता है कि जैन परम्परा में वैदिकों की तरह खेत में जाकर तथा अरण्य में जाकर धान्य, फल, फूल, पत्ते आदि इकट्ठा करना टीकाकार को मान्य नहीं है।

उत्तराध्ययन इस मूलसूत्र के ३५वें 'अणगारमार्गगति' अध्ययन में 'उंछ' शब्द का अर्थ अलग-अलग घरों से थोड़ी-थोड़ी मात्रा में तथा उद्गमादि दोषों से रहित लाई हुई भिक्षा, ऐसा टीका के आधार से भी जान पड़ता है।[४५]

उंछ शब्द के सबसे अधिक संदर्भ **दशवैकालिक सूत्र** में दिखाई देते हैं। इसमें उंछ शब्द तीन बार 'अन्नाय' के साथ[४६] और दो बार स्वतंत्र रूप से आया है।[४७] **निशीथ चूर्णि** में भी 'अन्नायउंछिओ साहू' इस प्रकार का विशेषणात्मक प्रयोग दिखाई देता है।[४८] **ओघनिर्युक्ति भाष्य** ६६ में 'अण्णाउंछं' शब्द का प्रयोग हुआ है।

'अन्नाय' अर्थात् अज्ञात इस शब्द का स्पष्टीकरण **दशवैकालिक टीका** तथा **दशवैकालिक** के दोनों चूर्णिकारों ने विशेष रूप से दिया है। **हारिभद्रीय टीका** में कहा है 'उञ्छं भावतो ज्ञाताज्ञातमजल्पनशीलो धर्मलाभमात्राभिधायी चरेत्।'[४९] जिनदासगणि ने चूर्णि में कहा है-

'भावुंछं अन्नायेण, तमन्नायं उंछं चरति।'[५०]

अगस्त्यसिंह की चूर्णि में तीन-चार प्रकार से इसका स्पष्टीकरण दिया है।[५१] अंतिमतः **अज्ञात** शब्द का तात्पर्य यह फलित होता है कि खुद का परिचय दिये बिना तथा अपरिचित कुलों से अल्पप्रमाण में उंछ की गवेषणा करनी चाहिए। प्रचलित उंछ शब्द का प्रयोग नये अप्रचलित अर्थ से करने के लिए 'अन्नायउंछं' शब्द के इतने सारे स्पष्टीकरण दिखाई देते हैं।

वसुदेवहिंडी में एक जैन साधु के उंछवृत्तिधारक ब्राह्मण [५२] गृहस्थ द्वारा भिक्षा ग्रहण करने का महत्त्वपूर्ण उल्लेख पाया जाता है। चूंकि साधु ने इस प्रकार के गृहस्थ से भिक्षा ली, इसका मतलब यह हुआ कि उसने यह भिक्षा प्रासुक और एषणीय मानी। इसके सिवा ब्राह्मण की साधु के प्रति परम श्रद्धा होने का उल्लेख है। इसमें दोनों परंपराओं की एक-दूसरे के प्रति आदर रखने की भावना निश्चित रूप से स्पृहणीय है।

कथाकोशप्रकरण मे एक स्थविरा के द्वारा उंछवृत्ति से काष्ठ इकट्ठा करने का उल्लेख है।[५३] इसका मतलब यह हुआ कि, 'केवल भिक्षा के लिए ही नहीं तो अन्य चीजों के लिए भी इकट्ठा करना' यह उंछ शब्द का प्रयोग दिखाई देता है।

आवश्यक निर्युक्ति १२६५ में नारद-उत्पत्ति की एक कथा दी गई हैं उसमें कहा है कि यज्ञयश तापस का यज्ञदत्त नाम का पुत्र और सोमयशा नाम की स्नुषा थी। उनका पुत्र नारद था। वह पूरा कुटुंब उञ्छवृत्ति से निर्वाह करता था। उसमें भी वे लोग एक दिन उपवास और एक दिन भोजन लेते थे।

ज्ञानपंचमी कथा में अरण्य से उंछादिक ग्रहण करके अपनी पत्नी को देने वाले पद्मनाभ नामक ब्राह्मण की कथा आयी है।[५४] इससे स्पष्ट होता है कि वैदिकों की उञ्छवृत्ति से आचार्य काफी परिचित थे। और अरण्य से उञ्छवृत्ति लाने के उल्लेख से कंदमूल, फल, फूल, पत्ते आदि ग्रहण करने का वैदिक परंपरा का संकेत भी यहां मिलता है।

जंबुचरित ग्रंथ में उंछशब्द में भिक्षा का प्रमाण बताने के लए दो शब्दों का प्रयोग किया है। शकट के अक्ष के अग्रभाग जितनी तथा व्रण के उपर लगाये जाने वाली लेप जितनी।[५५] वैदिक परंपरा के **पांडवचरित** ग्रंथ में जिस प्रकार कुन्ताग्र शब्द का प्रयोग किया है, उसी तरह का यह स्पष्टीकरण है।[५६]

उपदेशपद में हरिभद्र ने उंछ शब्द को शुद्ध विशेषण लगाया है।[५७] और शुद्ध का स्पष्टीकरण बयालीस दोषों से रहित दिया है। इसका मतलब यह हुआ कि 'केवल भिक्षा' इतने अर्थ में भी 'उंछ' शब्द का प्रयोग होता था।

लगभग १६वीं शती ईस्वी के आसपास जैन आचार्यों द्वारा जो प्रकरण ग्रंथ या लघुग्रंथ लिखे गये उनमें श्री विजयविमलगणिकृत **'अन्नायउंछकुलकं'** प्रकरण का समावेश होता है। आहारशुद्धि, आहार के अतिचार आदि का प्रतिपादन करने वाला यह संग्रह ग्रंथ है। भिक्षावाचक सारे दूसरे नाम दूर रखते हुए इन्होंने **'अन्नायउंछकुलकं'** शीर्षक अपने कुलक के लिए चुना यह भी एक असाधारण बात है। 'अज्ञातउञ्छ' का मतलब वे बताते हैं- 'अन्नावर्ज्जनादिना भावपरिशुद्धस्य स्तोक-स्तोकस्य ग्रहणं, अज्ञातां उञ्छग्रहणम्।'

बौद्ध जातकों में उञ्छचरिया

बौद्ध (पालि) ग्रंथों में भिक्षाचर्या के लिए 'उंछ' शब्द का प्रयोग किया गया है या नहीं यह देखने हेतु मुख्यतः **जातक कथाग्रंथ** देखे। विविध जातकों में कम से कम २५ बार **उंछचरिया, उंछापत्त, उंछापत्तागत** इन शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। यहाँ विविध स्थानों पर ब्राह्मण तापस के उञ्छाचर्या का निर्देश है। तथा बौद्ध भिक्षु (तापस, ऋषि) के उञ्छ का निर्देश है । अनेक बार वन में जाकर फलमूल भक्षण करना तथा बाद में गांव-शहर आदि में आकर नमक तथा खट्टा (मतलब पका हुआ रसयुक्त भोजन) भोजन भिक्षा में ग्रहण करने का उल्लेख है। मतलब यह हुआ कि बौद्ध परंपरा में **उंछ** के वैदिक तथा जैन दोनों अर्थ समानता से ग्रहण किये हैं। बौद्ध भिक्षुवनों से कंद-मूल, फल ग्रहण करते थे तथा विकल्प से घरों से पकी हुई रसोई को भी स्वीकार करते थे।

उपसंहार

वैदिक (संस्कृत) तथा जैन (प्राकृत) ग्रंथों में पाये गये उंछ संबंधी संदर्भों का अवलोकन करके हम निम्नलिखित साम्य-भेदात्मक उपसंहार तक पहुंचते हैं :-

साम्य संकेत-

दोनों परंपराओं में 'उञ्छ' इस धातु का 'इकट्ठा करना' (to glean, to collect, to gather,) इतना ही मूलगामी अर्थ है। **चांद्रव्याकरण** में तथा **जैन महाराष्ट्री कथाकोश प्रकरण** में इस मूलगामी अर्थ से इस धातु का प्रयोग पाया जाता है।

यह इकट्ठा करने की या चुनने की क्रिया अलग-अलग स्थान से अल्पमात्रा में ग्रहण करने का संकेत देती है। वे धान्य के कण हों या भिक्षा हो अलग-अलग स्थानों से अल्पमात्रा में ग्रहण की जाती है। अल्पग्रहण की मात्रा का सूचन करने वाली उपमा भी दोनों में प्रायः समान है। जैसे कि प्रमाण के लिए कुंताग्र या व्रणलेप तथा प्रवृत्ति की सूचक कबूतर या मधुकर।

वैदिक परंपरा का तापस तथा गृहस्थ खुद जाकर उञ्छ द्रव्य लाता है, उसी प्रकार जैन साधु भी स्वयं जाकर गृहस्थ से उंछ लाता है।

उञ्छवृत्ति को एक बार स्वीकार किया तो दोनों परंपरानुसार उसका पालन आजीवन करना पड़ता है।

उञ्छ (भिक्षा) अगर प्राप्त नहीं हुई तो दोनों उस दिन अनशन ही करते हैं।

भेदसंकेत-

यहां प्रयुक्त उञ्छ शब्द वैदिकों की उंछवृत्ति का निदर्शक है तथा जैन साधु के भिक्षा का वाचक है।

उञ्छ व्रत स्वरूप है। मांगकर लाई जाने वाली भिक्षा नहीं है। जैन साधु खुद गृहस्थ के घर जाकर भिक्षा (उञ्छ) मांगकर लाते हैं।

उञ्छ व्रत साधु और गृहस्थ दोनों के लिए है। भिक्षा व्रत सिर्फ साधुओं के लिए है। वैदिक परंपरा में उञ्छवृत्ति व्रतस्वरूप है। जैन परंपरा में यह साधु का नित्य आचार है।

उञ्छ में धान्य कण, भुट्टे तथा वृक्षों से कंदमूल, फल, फूल, पत्ते आदि का ग्रहण होता है। भिक्षा में गृहस्थ के द्वारा गृहस्थ के लिए बनाई हुई रसोई से साधु प्रायोग्य आहार का विधिपूर्वक ग्रहण होता है। जैन संदर्भ में 'उंछ-' शब्द का प्रयोग आहार के अलावा छादन, लयन, संस्तारक, द्वारपिधान आदि के बारे में भी प्रयुक्त किया गया है।

उञ्छवृत्ति में अग्निप्रयोग न की हुई खाने की चीजें लाई जाती हैं। उञ्छवृत्ति का धारक कभी भी पकाया हुआ आहार नहीं ला सकता। उंछवृत्ति से लाए गये सभी पदार्थ जैन दृष्टि से सचित्त हैं और जैन साधु को कभी भी कल्पनीय नहीं है। भिक्षा में अग्निप्रयोग के बिना, किसी भी वस्तु को सचित्त और अप्रासुक माना है।

उञ्छवृत्ति से लाया गया धान्य आदि पीसना, पकाना आदि क्रिया खुद उञ्छवृत्ति धारक करता है। भिक्षावृत्ति से लाये हुए आहार पर जैन साधु किसी भी तरह का संस्कार नहीं करता है।

उञ्छवृत्ति से लाये गये धान्य आदि का संग्रह किया जा सकता है। भिक्षा का संग्रह नहीं किया जाता।

संग्रहीत उञ्छ का 'सत्पात्र व्यक्ति को दान देना', पुण्यशील कृत्य माना गया है। साधु के द्वारा लाई गई भिक्षा का अन्य साधुओं के साथ अगर संविभाग भी किया तो उसको दान संज्ञा प्राप्त नहीं होती।

उञ्छवृत्ति से भिक्षा लाने के पहले किसी भी मालिक की अनुमति नहीं ली जाती। इसके विपरीत मालिक की अनुमति के बिना जैन साधु सुई भी अपने मन से उठा नहीं सकता। अगर कोई चीज अनुमति बगैर उठाए तो उसके अचौर्य व्रत का भंग (अदत्तादान) होता है।

निष्कर्ष-

साम्य-भेदात्मक निरीक्षणों के आधार से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जैन प्राकृत ग्रंथों में प्राप्त 'उञ्छ' शब्द निश्चित ही वैदिक परंपरा से लिया गया है। उञ्छवृत्तिधारी व्यक्ति समाज के लिए बहुत ही पूजनीय और आदारस्पद रहा होगा। इसी वजह से जैनों ने साधु के बारे में भी उञ्छ शब्द का प्रयोग किया होगा। जैनों ने वैदिकों से उंछ शब्द को तो ग्रहण किया लेकिन जैन परंपरा में प्राप्त साधु आचार विषयक नियमों से वे प्रामाणिक रहे।

उञ्छ शब्द मूलतः कृषि से संबंधित है। बालें या भुट्टों को काटा जाता है उसे 'शिल' कहते हैं और नीचे गिरे हुए धान्यकणों को एकत्र करने को 'उञ्छ' कहते हैं। यह शब्द अर्थ का विस्तार पाते-पाते भिक्षा से जुड़ गया और खाने के बाद रहा हुआ शेष भोजन लेना, घर-घर से थोड़ा-थोड़ा भोजन लेना, इसका वाचक बन गया। और समान्यतः भिक्षा, पिण्डैषणा, एषणा, गोचरी आदि का पर्यायवाची जैसा बन गया।

वैदिक तथा जैन दोनों ने अर्थ समानता से ग्रहण किये हैं। बौद्ध भिक्षु वनों से कंद-मूल, फल ग्रहण करते थे तथा विकल्प से घरों से पकी हुई रसोई को भी स्वीकार करते थे।

वैदिक परंपरा में उञ्छव्रतधारी साधु या गृहस्थ वर्तमान स्थिति में दिखाई देना कठिनप्रायः हो गया है। लेकिन साधुप्रायोग्य उंछ (भिक्षा) ग्रहण करने वाले साधु-साध्वियों का भारतीय समाज में होना आज भी एक आम बात है। उंछ शब्द के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य सामने आता है कि जैन समाज में आचार की प्रथा अविच्छिन्न रखने का प्रयास यत्नपूर्वक किया जाता है।

संदर्भ-

१. **धातुपाठ**-७.३६; २८.१३

२. **पाणिनी**-४.४.३२; **दंडविवेक** १ (४४.४); **जैनेंद्र व्याकरण** ३.३.१५५ (२१४.१५)

३. **यशस्तिलकचम्पू**-१.४४६.६; ४. **सिद्धांतकौमुदी**-६.१.८६; **दैवव्याकरण** १६६

५. **चान्द्रव्याकरण**-३.४.२६; ६. **कौटिलीय अर्थशास्त्र**- १.१३

७. **रामायण अयोध्याकाण्ड**-२.२१.२ (ड); ८. **अमरकोश**- २, ६, २

९. **वाराहगृह्यसूत्र**-६.२; **भागवद्पुराण**-७.११.१९; **मनुस्मृति**-४.५; **सांख्यायनगृह्यसूत्र**-४.११.१३; १०. **मनुस्मृति**-४.५

११. **लिंगानुशासन,** हेमचंद्र-११३.१६; **परमानंदनाममाला** ३६९९; **स्कंदपुराण**-३.२.३३

१२. **अभयदेव-स्थानांग टीका**- २६७ब.५; १३. **आरण्यकपर्व**- ३.२४६.२१

१४. **वैखानसधर्मसूत्र**-१.५.५

१५. **आश्वमेधिकपर्व**-१४.१३.७; **विष्णुधर्मोत्तर पुराण**- ३.२३७.२८

१६. **महाभाष्य**-१.४.३; ३१३.१३; १७. **शांतिपर्व**-१२.१८४.१८

१८. **आश्वमेधिकपर्व**-अध्याय ९३

१९. **आरण्यकपर्व**-३.२४६.१९; **शब्दरत्नसमन्वयकोश**-७४.७; ३००.१७; **सांखायनगृह्यसूत्र**-४.११.१३; **शांतिपर्व**-३६३.१, २

२०. **बृहत्कथाकोश**-६६.३४

२१. मनुस्मृति टीका (सर्वज्ञनारायन) १०.११०.; कौटिलीय अर्थशास्त्र-अध्याय ४५, पृष्ठ ६१
२२. काशिका-४.४.३२; ६.१.१६०; अपरार्क ऑफ याज्ञवल्क्यस्मृति-१६७.३; स्मृतिचंद्रिका-Ii ४५१.१६
२३. दंडविवेक-१ (४४.४); अपरार्क ऑफ याज्ञवल्क्यस्मृति-१६७.३; स्मृतिचंद्रिका- II ४५१.१६
२४. मनुस्मृति टीका (सर्वज्ञनारायन)- १०.११२
२५. दंडविवेक-१ (४४.४); चंद्रवृत्ति-१.१.५२
२६. मनुस्मृति टीका (सर्वज्ञनारायन)- ४.५; भागवद् पुराण-७.११.१६
२७. पांडवचरित-१८.१४३
२८. दीपकलिका ऑन याज्ञवल्क्यस्मृति-१.१२८ (१७.१७)
२९. हारलता-६.८.६; अभयदेव-स्थानांगटीका-२१३ अ.१२
३०. मनुस्मृति-४.२; ३१. चरकसंहिता-८.१२.६६ (८५)
३२. शिवपुराण-३.३२.६; आश्वमेधिकपर्व-६३.६; ३३. शिवपुराण-१.१५.३६; ३४. बुद्धचरित-७.१५; ३५. आश्वमेधिकपर्व-६३.२
३६. आश्वमेधिकपर्व-६३.५; ३७. ब्रह्माण्डपुराण-१.३०.३६
३८. सभापर्व-२.२२५.७; ३९. आचारांग टीका- ३६८ ब. १२
४०. सूत्रकृतांग-१.२.३.१४; सूत्रकृतांग टीका-७४ब. ११
४१. सूत्रकृतांग चूर्णि- पृ. ७४; ४२. स्थानांग-४.५२८
४३. प्रश्नव्याकरण टीका-६.२०; ४४. प्रश्नव्याकरण टीका- १०७ब. १३ से १५; ४५. उत्तराध्ययन ३५.१६; उत्तराध्ययन टीका-३७५अ. ९
४६. दशवैकालिक- ६.३.४; १०.१६; दशवैकालिक चूर्णि २.५
४७. दशवैकालिक- ८.२३; १०.१७; ४८. निशीर्थ चूर्णि २.१५६.२३
४९. दशवैकालिक टीका- २३१ ब.७; ५०. दशवैकालिक जिनदासगणि चूर्णि-पृ. ३१६
५१. दशवैकालिक अगस्त्यसिंह चूर्णि-८.२३; ६.३.४; १०.१६; चूलिका- २.५
५२. वसुदेवहिंडी, पृ. २८४; ५३. कथाकोशप्रकरण- पृ. २१.२३
५४. ज्ञानपंचमीकथा-७.४; ५५. जंबुचरित-१२.५४
५६. पांडवचरित-१८.१४३; ५७. उपदेश पद- गाथा ६७७

- सन्मति-तीर्थ,
फिरोदिया हॉस्टल, ८४४, शिवाजीनगर,
बी.एम.सी.सी. रोड, पुणे-४११००४

केवल बसन बदलने भर से,
पूरे नहीं बदल जाते हैं

जाने कितने भव-बदले हैं,
गिर-गिर कर हरदम संभले हैं,
ये बदलाव, अभी मंजिल है, कितनी दूर, न बतलाते हैं।
केवल बसन बदलने भर से, पूरे नहीं बदल जाते हैं।।१।।

मानव-तन पा लेने भर से,
कैसे छुये अवनि अंबर से,
जब तक उतरें नहीं धरा पर, तब उसे न छू पाते हैं।
केवल बसन बदलने भर से, पूरे नहीं बदल जाते हैं।।२।।

कितनी नादानीं कर डालीं,
व्यसन-वासनायें हैं पालीं,
भोगे भोग निरन्तर निशदिन, फिर भी हम नहीं अघाते हैं।
केवल बसन बदलने भर से, पूरे नहीं बदल जाते हैं।।३।।

पोथी पढ़ डालीं कहने से,
पीर सदा जाती सहने से,
कथनी-करनी इकसार बनें, तब समझदार कहलाते हैं।
केवल बसन बदलने भर से, पूरे नहीं बदल जाते हैं।।४।।

गर बबूल का तरु बोया है,
मिले न आम समय खोया है,
नासमझी में करें काम जो, वे सब पीछे पछताते हैं।
केवल बसन बदलने भर से, पूरे नहीं बदल जाते हैं।।५।।

-विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया
मंगल कलश, सर्वोदय नगर, अलीगढ़- २०२००१

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार जैन आगमों की वाचना

- श्री भगवान भरोसे जैन

जैन आगमों को श्वेताम्बरीय आम्नाय में, श्रुत ज्ञान अथवा सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। परम्परा के अनुसार अर्हत् भगवान ने आगमों का प्ररूपण किया और उनके गणधरों ने इन्हें सूत्रबद्ध किया। आगमों की संख्या ४६ है। श्वेताम्बर, स्थानकवासी और तेरहपंथी ३२ आगम मानते हैं- ११ अंग, १२ उपांग, ४ छेद सूत्र, ४ मूल सूत्र और आवश्यक।

नन्दी सूत्र के अनुसार श्रुत के दो भेद बताये गये हैं-अंगवाह्य और अंग प्रविष्ट। प्रश्न पूछे बिना अर्थ प्रतिपादन करने वाले श्रुत को अंग वाह्य और गणधरों के प्रश्न करने पर तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित श्रुत को अंग प्रविष्ट कहते हैं। अंग वाह्य के दो भेद बताये गये हैं- १. आवश्यक और २. आवश्यक व्यतिरिक्त। सामयिक आदि आवश्यक के ६ भेद हैं और आवश्यक व्यक्तिरिक्त कालिक और उत्कालिक के भेद से दो प्रकार का है- जो दिन और रात्रि की प्रथम और अंतिम पोरिसी में पढ़ा जाय उसे कालिक और जो किसी काल विशेष में न पढ़ा जाय उसे उत्कालिक कहते हैं। कालिक के **उत्तराध्ययन** आदि ३६ और उत्कालिक के **दशवैकालिक** आदि २८ भेद हैं। शनैः शनैः कालदोष से ये श्रुत ज्ञान नष्ट हो गया केवल एक गणधर उनका ज्ञाता रह गया और यह छः पीढ़ियों तक चलता रहा।

महावीर निर्वाण के १६० वर्ष पश्चात् मगधराज महानन्दिन् के शासनकाल में मगध में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा जिससे अनेक भिक्षु अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु प्रथम के नेतृत्व में दक्षिण की ओर चले गये और शेष स्थूलभद्र के नेतृत्व में घहीं रहे।[1] दुष्काल समाप्त होने पर स्थूलभद्र ने पाटलीपुत्र में जैन श्रमणों का एक सम्मेलन बुलाया जिसमें श्रुतज्ञान को व्यवस्थित करने के लिए खंड-खंड करके ग्यारह अंगों का संकलन किया। लेकिन दृष्टिवाद याद नहीं था, इसलिए पूर्वों का संकलन न हो सका। चतुर्दश पूर्वधारी केवल भद्रबाहु थे, श्वेताम्बर मान्यतानुसार वे उस समय नेपाल में थे। ऐसी हालत में पूर्वों का ज्ञान सम्पादन करने के लिए संघ की ओर से कुछ साधु नेपाल भेजे गये, लेकिन उनमें से केवल स्थूलभद्र ही टिक सके, बाकी लौट आये। अब स्थूलभद्र पूर्वों

के ज्ञाता तो हो गये, किन्तु किसी दोषवश प्रायश्चित स्वरूप भद्रबाहु ने अन्तिम चार पूर्वों को किसी को अध्यापन करने से मना कर दिया। इस समय से शनैः-शनैः पूर्वों का ज्ञान नष्ट होता गया। अस्तु जो कुछ भी उपलब्ध हुआ उसे पाटलीपुत्र के सम्मेलन में सिद्धान्तरूप में संकलित कर लिया गया। यही जैन आगमों की पाटलीपुत्र वाचना कही जाती है।

महावीर निर्वाण के लगभग ८२७ या ८४० वर्ष बाद (आर्यस्कन्दिल के अनुयायियों के अनुसार वीर सं. ८२७ तथा नागार्जुन सूरि के अनुयायियों के अनुसार वीर सं.८४०) (सन् ३००-३१५ ई.) आगमों को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए आर्य स्कन्दिल के नेतृत्व में मथुरा में दूसरा सम्मेलन हुआ। इस समय बड़ा अकाल पड़ा जिससे साधुओं को भिक्षा मिलना कठिन हो गया और आगमों का अभ्यास छूट जाने से आगम नष्टप्राय हो गये। दुर्भिक्ष समाप्त होने पर इस सम्मेलन में जो जिसे स्मरण था उसे **कालिक श्रुत** के रूप में एकत्र कर लिया गया। इसे माथुरी वाचना के नाम से कहा जाता है। कुछ लोगों का कथन है कि दुर्भिक्ष के समय श्रुत का नाश नहीं हुआ, किन्तु आर्यस्कंदिल को छोड़कर अनेक मुख्य अनुयोगधारियों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा।

इसी समय नागार्जुन सूरि के नेतृत्व में वल्लभी में एक और सम्मेलन हुआ। इसमें जो सूत्र विस्मृत हो गये थे, उन्हें स्मरण करके सूत्रार्थ की संघटनापूर्वक सिद्धान्त का उद्धार किया गया। आगमों की इस वाचना को प्रथम वल्लभी वाचना कहते हैं। इन दोनों वाचनाओं का उल्लेख **ज्योतिष्करंड टीका** आदि ग्रन्थों में मिलता है।

तत्पश्चात् महावीर निर्वाण के लगभग ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात (सन् ४५३ या ४६६ ई.) में वल्लभी में देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में चौथा सम्मेलन बुलाया गया। इस संघ समकाय में विविध पाठान्तर और वाचना भेद आदि का समन्वय करके माथुरी वाचना के आधार से आगमों को संकलित करके उन्हें लिपिबद्ध किया गया।

दृष्टिवाद फिर भी उपलब्ध न हो सका, अतएव उसे व्युच्छिन्न घोषित कर दिया गया। इसे जैन आगमों की अन्तिम और द्वितीय वल्लभी वाचना कहते हैं। श्वेताम्बर आम्नाय द्वारा मान्य वर्तमान आगम इसी संकलना का परिणाम है।

- ३१९/१२, चूड़ी वाली गली, चौक, लखनऊ-३

सन्दर्भः- १. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन : **भारतीय इतिहास : एक दृष्टि,** तृतीय संस्करण, पृ. ६३

अपनी बोली और अपनी जमीन

- श्री सुरेश जैन 'सरल'

गत दो दशकों से यदि हमारे देश में सर्वाधिक कुछ गड़बड़ाया है तो दो तथ्य, एक यह कि ग्रामीणजन चार कक्षाएं पढ़कर अपनी परम्परा से चली आ रही बोली-वानी को छोड़ रहे हैं और दूसरा तथ्य यह कि शहरीजन चार डिग्रियां प्राप्त करते ही अपनी जमीन (जन्मभूमि) छोड़ रहे हैं; नौकरी की प्राप्ति के लिए अन्यान्य प्रदेशों में ही नहीं, विदेश जाकर बस रहे हैं। कतिपय महत्वाकांक्षी धनभोगी उद्योगपति भी इसी श्रेणी में माने जाते हैं।

जो लोग यह छोड़ने का कार्य कर रहे हैं वे व्यक्तिगत रूप से भले ही तरक्की कर गये हों, पर अपने ग्राम और शहर को तो नुकसान ही पहुंचाते हैं। ग्राम और शहर का नुकसान माने सम्पूर्ण राष्ट्र का नुकसान जिसमें केवल आर्थिक नुकसान नहीं है; गिनें-संस्कृति, भाषा, कला के साथ-साथ आत्मसम्मान का नुकसान। आदमी धन और हैसियत बढ़ाने के लिये बौरा गया है। आश्चर्य तो यह कि उन्हें भाषा और जमीन छोड़ने में उन्हीं के पारिवारिक जन सहयोग करते हैं एवं समाज में उनके छिछले विकास की डींग हांकते हैं- 'मेरे पुत्र को प्रतिवर्ष एक करोड़ का आफर मिला है।' छिः ऐसे लोगों को क्या कहें? भाषा और धन को ही समृद्धि मान बैठे हैं। यदि सन् १९४२ के पूर्व ऐसे लोगों की अधिकता होती तो देश आजाद ही न हो पाता। उस समय के महान क्षण याद करें जब भाषा और जमीन छोड़ने वालों को उनका ही परिवार 'म्लेच्छ' कहने से नहीं चूकता था। कुछ लोग तो जाति-बिरादरी से ही निकाल दिये जाते थे।

'जैन तीर्थ वंदना' के मई ०७ अंक में श्री अरविंद खरे का लेख (पृ. २०, २१) पढ़ कर चकित होना पड़ा कि दुनिया में अभी करीब ७ हजार भाषाएं (बोलियां मिलाकर) पाई जा रही हैं, जो तेजी से लुप्त हो रही हैं।

जो छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त करने विदेश जाते हैं, वह कार्य उचित है, मगर केवल धनार्जन के लिये अपनी जमीन छोड़ने वाले सराहना के पात्र नहीं हैं। उनकी, धन की प्यास, कभी जीते-जी पूरी हो ही नहीं सकती। वे बेचारे कुछ अच्छा कर मर जाने के बजाय, धन संचित कर मरने वालों की पंक्ति में खड़े हैं।

देश में आज भी ९९ प्रतिशत से अधिक लोग हैं जो अपनी बोली (भाषा) और जमीन से जुड़े हैं। उनमें भी अच्छे और बुरे खोजे जा सकते हैं, पर राष्ट्र हित में

'बुरों' को भी 'अच्छा' मान लिया जाता है। श्री लालू यादव को ही ले लें, संसार की सब बुराइयां हो सकती हैं उनमें, पर उनकी वह छवि जो भाषा और जमीन से जुड़ी हुई है, हर जगह सफल और अजेय बन कर सामने आई है। अतः अब तक जो हुआ सो हुआ, अभी भी चेता जा सकता है, बोली और जमीन छोड़ने वाले धनाभिलाषियों की खुले मुँह सराहना करना बंद करना होगा। साठ वर्ष पहले का पाठ पुनः पाठ्यपुस्तकों में लाना होगा- माँ और मातृभूमि छोड़ी नहीं जानी चाहिए, उन पर सेवा और सीमित कमाई के पुष्प चढ़ाते रहना चाहिए।

आज जो लोग अपनी पारंपरिक बोली/भाषा का उपयोग कर रहे हैं वे जमीन के प्रति अधिक निष्ठावान पाये जा रहे हैं। वे अपने-पशुधन, फसलों, गृहउद्योगों, वन्य उपजों के माध्यम से देश की महान सेवा कर रहे हैं। आत्म विकास की सदा चर्चा करने वाले भारत में धनविकास की विदेशी बीमारी का उदय कब और कैसे हो गया, इस पर विचार करें और नूतन पीढ़ी को सीमित धन के साथ ज्ञान, उपकार, सेवा और चरित्र वर्धन करने वाली सीख दें। आत्म सम्मान, पत्नी-सम्मान और संतान सम्मान लुटा कर, गृहीत वैभव क्या फल देगा, इस पर सोचें।

- २६३, गढ़ाफाटक, जबलपुर, म.प्र.

Jains

Jains are the ones,
For sport who don't use the guns.

Jain saints of Sthanakvasi sect,
Put cloth on their mouth to save insect.

When Jains are the Mayor,
The criminal cases are usualely rare,

Jains have compassion for all the beings,
They believe in non-vioent deeds.

Jains are the ones,
For sport who don't use the guns.

- Baby Palaq Jain
Class V, Loreto Convent
Jyoti Nikunj, Charbagh, Lucknow

नैतिकताविहीन धार्मिकता-एक खतरनाक स्थिति

- डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा

मानव जीवन में धर्म का प्रवेश नैतिकता के द्वार से ही संभव है। धार्मिकता और नैतिकता इन दोनों का चोली दामन का, गुड़ और मिठास जैसा सम्बन्ध है। नैतिकताविहीन व्यक्ति धार्मिक हो ही नहीं सकता। हाँ, धार्मिक होने का ढोंग कर सकता है। आईये विषय को हम कुछ उदाहरणों से और स्पष्ट समझने की चेष्टा करते हैं-

अभी हाल ही में श्री बंगाल बिहार उड़ीसा दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की कार्यकारिणी का चुनाव सम्पन्न हुआ। समाज द्वारा मुझे चुनाव अधिकारी चुना गया था। समस्त कोलकाता एवं उपनगर के सभी जैन वयस्क लोगों की प्रथम बार मतदाता सूची, एक वर्ष की कड़ी मेहनत के पश्चात, तैयार हुई तथा सबको व्यक्तिगत फोटो परिचय पत्र दिया गया। परन्तु नैतिकता देखिये एक वर्ग विशेष वोटर-सूची और पहचान-पत्र का मात्र इसीलिए विरोध करता रहा क्योंकि इससे उन्हें धांधली करने का अवसर जो नहीं मिल पाता। वे न्यायालय गये, छह माह तक व्यवधान रहा परन्तु वहाँ भी उनका पक्ष नहीं चला। अन्ततः उन्होने हाईकोर्ट द्वारा नियुक्त दो विशेष अधिकारियों की देखरेख में सम्पन्न आठ दिवसीय मतदान प्रक्रिया का बहिष्कार तक कर दिया। धर्मायतनों में सेवा करने के नाम पर, मात्र कुछ नेताओं के व्यक्तिगत अहम् के चलते, समाज विघटन का यह कदम किस अपेक्षा से धार्मिक है और किस अपेक्षा से नैतिक, एक विचारणीय प्रश्न है ?

धर्म-मंगल पत्रिका के मई अंक में एक मुनिश्री के बैंक एकाउंट का सम्पूर्ण विवरण छपा है जिसे वे आज भी अपने गृहस्थावस्था के नाम से स्वयं ही दस्तखत कर संचालित करते हैं तथा उसमें रुपये जमा तथा निकासी दोनों हो रहे हैं। यह सब क्या है, इस पर समाज का चिन्तन अपेक्षित है।

इसी तरह एक मुनिश्री अपने साथ एक जिरॉक्स मशीन रखते हैं तथा शास्त्रों की प्रतियां बनाने के नाम पर श्रावकों से लाखों रुपये बटोरते देखे गये हैं, देखें **धर्म-मंगल** का मई अंक।

विगत वर्ष श्री सम्मेदशिखरजी में हम लोग एक मुनिश्री के दर्शनार्थ गये, तो वे बैठते ही कोलकाता जैन समाज में शताधिक करोड़ की पार्टियों की सूची बनाने लगे।

हमारा तो उसी वक्त माथा ठनक गया। सुना है, अब वे करोड़ों की योजनाओं को मूर्त रूप देने में लगे हुए हैं। लोभ-कषाय और परिग्रह-पाप का उपदेश देने वाले धर्म में यह सब नैतिकता के किस दायरे में आयेगा, एक विचारणीय प्रश्न है। सम्यक्त्व के निःकांक्षित अंग की यह कौन सी श्रेणी है, वह यह विज्ञजन ही जाने ?

दिग्विजय पत्रिका के ताजा अंक के अनुसार एक दानदाता द्वारा बीस वर्ष पूर्व निर्मित एक भव्य समवशरण मंदिर को वास्तु के नाम पर किसी साधु विशेष की प्रेरणा से तोड़ देना, क्या समाज और साधु की नैतिकता पर प्रश्न चिह्न नहीं लगाता है?

एक अन्य मुनिश्री द्वारा जमीन से निकली संवत् १६४० की मूर्ति पर मशीन चलाकर प्रशस्ति मिटाने का और नवीन प्रशस्ति लिखाने का कृत्य सामने आया, समाज के प्रबुद्ध लोगों ने निन्दा प्रस्ताव भी पास किया, यह मुनिश्री की नैतिकता का कौन सा उदाहरण है ?

ऊंची दुकान फीके पकवान- अनेकान्त और अपरिग्रह के हमारे धर्म में आज अधिकांश संत एवं समाज श्रेष्ठी नेतागण गलत प्रसंगों में चर्चित हैं। मान और लोभ कषाय की परिभाषा आज लोकेषणा और वित्तेषणा ने बदल दी है।

खाने के दांत और, दिखाने के दांत और- धर्म तो आत्मा का स्वभाव है जो क्षमा-मार्दव-आर्जव-सत्य-शौच-संयम-तप-त्याग-अकिंचन एवं ब्रह्मचर्य-इन दस लक्षणों से प्रकट होता है। परन्तु आज की धार्मिकता, साम्प्रदायिक का चोला पहन कर तेरहपंथ और बीसपंथ के एकान्त चिन्तन में सिमट गई है और बाह्य क्रिया-काण्डों से उसका संबंध स्थापित कर दिया गया है। सम्भवतः इसीलिए आज धार्मिकता नैतिकताविहीन होती हुई दृष्टिगत हो रही है। धर्म और सम्प्रदाय के बीच की सूक्ष्म विभाजन रेखा को गंभीरता से समझना वर्तमान समय की प्रथम आवश्यकता है।

कुण्डलपुर बड़े बाबा की विस्तृत अंतरिम जांच रिपोर्ट (दिनांक ७.५.०७) की एक प्रति हमारे सामने रखी है और उसमें लाखों करोड़ों के हेरा-फेरी के स्पष्ट संकेत हैं। यह धर्म क्षेत्र में अनैतिकता का स्पष्ट प्रमाण है। इस पर आप क्या कहेंगे?

समन्वयवाणी पत्रिका के ताजा अंक के अनुसार, जयपुर में एक गृहस्थ को डॉक्टरों द्वारा मृत घोषित कर देने के बाद, किन्हीं आचार्यश्री ने मृतक के घर पहुँचकर उसे दिगम्बरी दीक्षा दे दी और शव को विमान में बैठाकर अंतिम संस्कार करा दिया। यह समाज की धार्मिकता और नैतिकता दोनों पर ही प्रश्नचिह्न स्वरूप है ?

उपरोक्त सभी प्रकरणों में धर्म के नाम पर नैतिकताविहीन दृष्टि स्पष्ट परिलक्षित हो रही है तथा यही कारण है कि आज का बुद्धिजीवी वर्ग तथाकथित धर्म से दूर होता दिखाई दे रहा है। धार्मिकता और नैतिकता की तर्कसंगत मीमांसा करना आज समय की महती जरूरत है तभी हम नैतिकताविहीन धार्मिकता के चोले को उतारकर सच्चे मोक्षमार्ग के पथिक बन सकेंगे।

- सम्पादक दिशा बोध,

४६, स्ट्राण्ड रोड, तीन तल्ला, कोलकाता-७०० ००७

धांकड़ जाति

-श्री सत्येन्द्र जैन, एडवोकेट

धांकड़ जाति का वर्णन जैनों की ८४ उपजाति में आता है। धांकड़ क्षत्रिय जाति है और मध्यप्रदेश के मुरैना, ग्वालियर, शिवपुरी आदि जिलों के ग्रामीण अंचल में निवास करती है। राजस्थान में आज भी इस जाति के लोग जैन धर्म का पालन करते हैं। लेकिन मध्यप्रदेश में वे जैन धर्म से विमुख हो गए हैं। धांकड़ समाज में प्याज, लहसुन भी वर्जित है और हमारा सबसे बड़ा पर्व अनन्त चर्तुदशी वे सभी बड़े धूमधाम व उत्साह के साथ मनाते हैं। राजस्थान के जैन धांकड़ों से इनके विवाह सम्बन्ध चलते हैं। राजस्थान, मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र तक यह समाज निवास करता है। उनकी मुख्य आजीविका कृषि ही है। ये लोग धर्म को जानने व समझने के बड़े इच्छुक हैं। जिस प्रकार बिहार, झारखंड, बंगाल व उड़ीसा के सराकों को मुख्य धारा से जोड़ने के लिये प्रयत्न किया गया उसी प्रकार धांकड़ जाति को मुख्यधारा से जोड़ने की पूरे देश में जरूरत है तभी जैन धर्म पुनः विस्तार को पाएगा। अहिंसा में आस्था रखने वाले सभी बन्धुओं तक तीर्थंकरों की वाणी को पहुंचाने की आवश्यकता है। मेरा सभी से अनुरोध है कि समाज के सन्त वर्ग, विद्वत् वर्ग व प्रबुद्ध वर्ग इस विषय पर चिन्तन करें तो धर्म प्रभावना विस्तार को प्राप्त कर लेगी।

- संयोजक जैनम् फाउन्डेशन

सी-२/३०३, यमुना विहार, दिल्ली-५३

वीर शासन जयन्ती

- श्री सुरेशचन्द्र जैन वारौलिया

जैन पर्वों में श्रावण कृष्ण प्रतिपदा का प्रभात अपना विशिष्ट स्थान व महत्व रखता है। उस दिन ईस्वी पूर्व ५५७ में चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् वर्द्धमान महावीर ने विपुलाचल पर्वत पर शान्ति और समृद्धि का जीवनप्रद उपदेश दिया था। वर्द्धमान रूपी हिमाचल से स्याद्वाद गंगा का अवतरण उस मंगलमय अवसर पर हुआ था। अतएव उस महान् शुद्ध एवं सात्विक स्मृति का उद्बोधक होने के कारण यह वीरशासन दिवस साधक के लिए अभिवन्दनीय है। भगवान ने अपना यह सार्वजनीन अनेकान्तमय उपदेश न दिया होता तो संसार मोहान्धकार में निमग्न रहकर आपाधापी में ही रहता।

वीर हिमाचल ते निकसी, गुरु गौतम के मुखकुण्ड ढरी है।
मोहमहाचल भेद चली, जग की जड़ता तप दूर करी है।।

यह दिवस वीर शासन के प्रकाश के द्वारा मंगल रूप होने के पूर्व भी अपना विशिष्ट स्थान धारण करता था। भोगभूमि की रचना के समाप्त होने पर कर्मभूमि का आरम्भ इसी दिन हुआ था। यतिवृषभ आचार्य ने **तिलोयपण्णत्ति** में इसे वर्ष का आदि दिवस बताया है। श्रमण संस्कृति वालों का वर्षा का आरम्भ श्रवण नक्षत्र युक्त श्रावण मास से होना ही संगत बताया है। उस समय जब मेघमाला जल धारा द्वारा विश्व को तृप्त करती है तो धर्मामृत वर्षा द्वारा श्रमणगण अथवा उसके आराधक अपना व दूसरों का कल्याण करते हुए आत्मा को निर्मल बनाते हैं।

भगवान् महावीर की केवलज्ञान ज्योति का दिव्य प्रकाश विश्व के कोने-कोने में फैला। उन्होंने अपनी दिव्य देशना से प्राणी मात्र के कल्याण हेतु सत्य मार्ग का उपदेश दिया। भगवान महावीर ने जगह-जगह पदाति विहार कर **अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह** इन ५ सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया। धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा का विरोध कर अहिंसा धर्म की रक्षा की। उन्होंने अज्ञान रूपी अंधकार का नाशकर सत्य की ज्योति जगाई। विचार में अनेकान्त, आचार में अहिंसा, वाणी में स्याद्वाद और समाज में अपरिग्रह, यही भगवान महावीर का सर्वोदयतीर्थ व अमर संदेश है।

वीर प्रभू ने अपना उपदेश जन साधारण की भाषा में ही दिया था क्योंकि धर्म केवल पण्डितों की सम्पत्ति नहीं है। उस पर प्राणी मात्र का अधिकार है। यह भी वीर शासन की महान विशेषता है। इसका एक मात्र लक्ष्य विश्व कल्याण था। भगवान महावीर के समय में अनेक मत-मतान्तर प्रचलित थे। इस कारण जनता भ्रम में पड़ी हुई थी कि किसका कहना सत्य है और क्या मानने योग्य है। मत प्रवर्तकों में सर्वदा

विवाद रहता था। एक दूसरे के प्रतिद्वंदी शास्त्रार्थ चला करते थे। अपने-अपने सिद्धान्तों पर प्रायः सभी अड़े हुए थे। सत्य की जिज्ञासा मन्द पड़ गई थी। तब भगवान महावीर ने उन सबका समन्वय कर वास्तविक सत्य प्राप्ति के लिए अनेकान्त को अपने शासन में विशिष्ट स्थान दिया, जिसके द्वारा सब मतों के विचारों को समभाव से तोला जा सके तथा सत्य को प्राप्त किया जा सके। इस सिद्धान्त द्वारा लोगों का बड़ा कल्याण हुआ। विचार उदार एवं विशाल हो गये। सत्य की जिज्ञासा पुनः प्रतिष्ठित हुई। सभी प्रकार के विवाद समाप्त हो गये। इस वीर शासन की सर्वत्र जय-जयकार होने लगी।

आज के भारत की नैतिक और धार्मिक प्रवृत्ति बिलकुल बदल गई है। आज यहाँ के निवासी दीन-हीन बने हुए हैं। पूर्व में भारत का अनुसरण अन्य देश करते थे और उसको अपना गुरु मानकर यूनान जैसे उन्नतशील देश के विद्वान् ज्ञानोपार्जन के लिए भारत आते थे, परन्तु आज उल्टी गंगा बह रही है। स्वयं भारतीय विदेशों में जाकर ज्ञान का अर्जन कर रहे हैं, भौतिक सभ्यता की उपासना का कितना कटु परिणाम भारत को शीघ्र भुगतना पड़ेगा यह अभी इस देश के वासियों की समझ में नहीं आया है। भविष्य उनकी आँखों को खोलेगा और तब प्राचीन भारत को आशा भरे नेत्रों से देखेंगे, यही वीर शासन जयन्ती की उपलब्धि है।

बी-६७७, कमलानगर, आगरा

पारदर्शी छन्द

वस्त्र-अन्न-धन दान, करते हैं धनवान,
नेत्र-दान सभी करो, लगे नहीं पाई है।
विज्ञान का चमत्कार, मिटा अन्ध-अन्धकार,
आपकी आँखों से देगा, अन्धों को दिखाई है।
शरीर ये मरे बाद, जले-गड़े होगा खाद,
मुर्दा-अंग दान करो, पुण्य की कमाई है।
सभी दान बार-बार, नेत्र-दान एक बार,
'पारदर्शी' देह-दान, करें सभी भाई हैं।

- छन्द राज ॐ 'पारदर्शी'
पारदर्शी साधना केन्द्र,
उत्तरी आयड़, उदयपुर-३१३००१

प्रश्न ये हल आज करना चाहता हूँ

कौन मैं, आया कहाँ से, किसलिए हूँ —
प्रश्न ये हल आज करना चाहता हूँ।
जीव संचालित हुआ किस शक्ति से है,
दीप की बाती-सदृश वह जल रहा है
श्वास-पंखों पर किया आरूढ़ किसने-
कौन-सी ले प्रेरणा वह चल रहा है।
क़िस महत्तम लक्ष्य की वह खोज में है —
विभ्रमित क्यों—जानना यह चाहता हूँ।
प्रश्न ये हल आज करना चाहता हूँ।।
दक्षिणारत है धरा क्यों बात क्या है,
किस पुरुष की कर रहा नभ आरती है?
किस प्रभा से है विभासित विश्व सारा—
कर रही गुणगान किसका भारती है ?
कौन है वह जो कि तन-मन-प्राण में शुचि-
आ समाया—जानना यह चाहता हूँ।
प्रश्न ये हल आज करना चाहता हूँ।।
रात-दिन यह नयन उन्मीलन किसी का,
व्याप्त रन्ध्रों में तरंगित नाद-अनहद्।
देन किसकी है—छलकते स्नेह को उर-
में संजोए जो कि विह्वल प्राण गद गद?
कौन-सी मंजिल किधर है जीव उन्मुख—
तथ्य क्या है—जानना यह चाहता हूँ?
प्रश्न ये हल आज करना चाहता हूँ।।

- **डॉ. गणेशदत्त सारस्वत**
सारस्वत-सदन, सिविल लाइन्स, सीतापुर -२६१००१

जैन समाज में व्रत एवं त्यौहारों का महत्व

- श्रीमती कुसुम सोगानी

जैनों द्वारा अनेक उत्सव व व्रत मनाये जाते हैं। त्यौहार किसी पौराणिक घटना के दिन की स्मृति के रूप में मनाए जाते हैं। जबकि व्रत आत्मशुद्धि के ध्येय से किए जाते हैं। त्यौहारों व व्रतों के माध्यम से आम आदमी का ध्यान सांसारिकता से अलग कर अन्तिम गति की ओर मोड़ा जाता है। इनके माध्यम से आम आदमी की भगवान के प्रति समर्पण की भावना जागृत कर उसका आध्यात्मिक उत्थान करना है। केवल मात्र धार्मिक स्थान के दर्शन लोगों के दिमाग पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं उसी प्रकार व्रतोत्सवों का पालन कर लोगों को उनके जीवन के मुख्य उद्देश्य के प्रति जागरूक किया जा सकता है। दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में अधिकतर व्रतोत्सब धार्मिक अनुष्ठान के रूप में मानये जाते हैं। जैन धर्म के अनुसार धार्मिक अनुष्ठान उचित समय, उचित स्थान व उचित दिन पर किये जाने चाहियें जिसका निर्धारण ज्योतिष द्वारा होता है। एक जैन पुजारी को अनिवार्य तौर पर ज्योतिष का ज्ञान होना चाहिए तथा यह जैन पुजारी का कर्तव्य है कि वह सभी धार्मिक अनुष्ठानों के उचित समय व स्थान का निर्धारण करे।[1] यूं तो जैन व्रतोत्सव की संख्या भारी है, किन्तु यहां संक्षेप में महत्वपूर्ण का ही उल्लेख किया गया है।

१. पर्युषण पर्व या दशलक्षण पर्व

यह जैनों का सबसे बड़ा पर्व है। यह अत्यधिक धार्मिक स्वरूप का पर्व माना जाता है। इसे दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों ही बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय में यह पर्व प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल पंचमी से चतुर्दशी तक मनाया जाता है। इन दिनों जैन मन्दिरों में खूब आनन्द छाया रहता है। प्रतिदिन प्रातःकाल से ही सभी स्त्री-पुरुष स्नान करके मन्दिरों में पहुंच जाते हैं और बड़े आनन्द के साथ भगवान का पूजन करते हैं। पूजा समाप्त होने पर **तत्वार्थसूत्र** के दस अध्यायों में से एक-एक अध्याय का व्याख्यान और उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य इन धर्मों में से एक-एक धर्म का विवेचन होता है। धर्म के इन दस लक्षणों की इस पर्व में खास तौर पर आराधना की जाती है। व्याख्यान के लिए बाहर से बड़े-बड़े विद्वान बुलाए जाते हैं और प्रायः सभी स्त्री-पुरुष उनके उपदेश

से लाभ उठाते हैं। त्याग धर्म के दिन परोपकारी संस्थाओं को दान दिया जाता है। इन दस दिनों में सभी स्त्री और पुरुष अपनी क्षमतानुसार व्रत करते हैं। कुछ लोग पूरे दस दिन कोई भोजन ग्रहण किए बिना व्रत रखते हैं जबकि अनेक दिन में एक बार भोजन ग्रहण करते हैं। दशलक्षण पर्व का अन्तिम दिन, जिसे अनन्त चतुर्दशी कहते हैं, अत्यधिक धार्मिक माना जाता है तथा इस दिन को विशेष अनुष्ठानों द्वारा मनाया जाता है। सामान्यतया इस दिन सभी लोग व्रत करते हैं तथा पूरा दिन एक मंदिर में गुजारते हैं।[२] तदनन्तर आश्विन कृष्ण प्रतिपदा को 'क्षमावाणी अर्थात् परस्पर क्षमाभाव के आदान प्रदान का कार्य होता है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में इसे 'पर्युषण' कहा जाता है। यह भाद्रपद कृष्ण द्वादशी से भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी तक ८ दिन का होता है। भाद्रपद शुक्ल पंचमी को संवत्सरी होती है। यह साधुओं के लिये दस प्रकार का कल्प यानी आचार कहा जाता है उसमें एक 'पर्युषणा' है। 'परि' अर्थात पूर्ण रूप से, 'उषणा' अर्थात् बसना। अर्थात् एक स्थान पर स्थिर रूप से वास करने को पर्युषण कहते हैं। श्वेताम्बरों के पर्युषण पूरा होने के दूसरे दिन से दिगम्बरों का दशलाक्षणी पर्व प्रारम्भ होता है। सांवत्सरिक पर्व में यदि पूरे वर्ष कोई भी गलती अथवा वैर विरोध एक दूसरे के प्रति हो गया हो, उसके लिये सम्वत्सरी के दिन 'मिच्छामि दुक्कड़" अर्थात् 'मेरे दुष्कृत मिथ्या हों' ऐसा कहकर क्षमायाचना की जाती है।[३]

२. अष्टान्हिका पर्व

जैन धर्म का दूसरा महत्वपूर्ण पर्व अष्टान्हिका पर्व है। यह पर्व कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ मास के अन्तिम आठ दिनों में मनाया जाता है। जैन मान्यता के अनुसार इस पृथ्वी पर आठवां नन्दीश्वर द्वीप है। उस द्वीप में ५२ जिनालय बने हुए हैं। उनकी पूजा करने के लिए स्वर्ग से देवगण उक्त दिनों में आते हैं। चूंकि मनुष्य वहाँ तक जा नहीं जा सकते इसलिए उक्त दिनों में पर्व मनाकर यहीं पर पूजा करते हैं। इसके अन्तर्गत भी व्रत किए जाते हैं। इन्हीं दिनों में सिद्धचक्र पूजा विधान का भी आयोजन किया जाता है। श्वेताम्बरों का भी यह महत्वपूर्ण पर्व है।[४]

३. महावीर जयन्ती

चैत्र शुक्ल त्रयोदशी महावीर स्वामी की जन्म तिथि है। यह पूरे देश में बड़े धूमधाम एवं उत्साहपूर्वक मनाई जाती है। प्रातःकाल जैनों के जुलूस निकलते हैं।

महावीर स्वामी का संदेश जैन और गैर जैन दोनों को सुनाया जाता है। यह एक मात्र ऐसा त्यौहार है जो जैन समुदाय के सभी सम्प्रदायों द्वारा मनाया जाता है।[५]

४. वीर शासन जयन्ती

चौबीसवें एवं अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर को पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर उनकी सबसे पहली धर्मदेशना ईसा पूर्व ५५७ की श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को मगध की राजधानी राजगृही नगरी के विपुलाचल पर्वत पर हुयी थी। भगवान महावीर द्वारा धर्मचक्र परिवर्तन की स्मृति में जैनों द्वारा श्रावण मास के कृष्ण पक्ष के प्रथम दिन प्रतिवर्ष वीर शासन जयन्ती मनाई जाती है।[६]

५. श्रुत पंचमी

श्रुत पंचमी पर्व ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को मनाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि आचार्य धरसेन की प्रेरणा से पुष्पदन्त एवं भूतबलि मुनिवर्य द्वय द्वारा प्रणीत और ताड़पत्रों पर लिपिबद्ध महान धर्मग्रन्थ **षट्खण्डागम** की ७५ ई. में इस दिन चतुर्विध संघ द्वारा पूजा की गई थी। इस अवसर को प्रतिवर्ष स्मरण करने के ध्येय से दिगम्बर जैन अपने धार्मिक ग्रन्थों की पूजा करते हैं तथा ग्रन्थों से धूल व कीटाणुओं को हटाते हैं।[७] यह त्यौहार जैन साहित्य को सुरक्षित रखने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान है। श्वेताम्बर जैनों में कार्तिक शुक्ल पचंमी को **ज्ञान पंचमी** माना जाता है। उस दिन वे धर्म ग्रन्थों की पूजा तथा सफाई करते हैं।

६. तीर्थंकरों के जन्मदिन

उक्त पर्वों के अतिरिक्त प्रत्येक तीर्थंकरो के गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण के दिन पर्व कहे जाते हैं। उन दिनों में भी जगह-जगह उत्सव मनाए जाते हैं।[८] जैन धर्म के दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों के तीर्थ स्थान हैं। इनमें कुछ ऐसे स्थान हैं जिनको दोनों सम्प्रदाय मानते हैं एवं वहाँ जाकर पूजा अर्चना करते हैं। बहुत तीर्थ स्थान ऐसे हैं जिन्हें या तो दिगम्बर मानते व पूजते हैं अथवा केवल श्वेताम्बर। कैलाश, पावापुरी, गिरनार, सम्मेदशिखर आदि ऐसे स्थान हैं जिनको दोनों ही सम्प्रदाय समान रूप से मानते हैं।

७. संयम के दिन

उपरोक्त विशेष दिनों के अतिरिक्त जैन वर्ष के प्रत्येक मास दस दिन व्रत रखते हैं। इसके अनुसार प्रत्येक माह के कृष्ण व शुक्ल दोनों पक्षों की द्वितीया, पंचमी,

अष्टमी, एकादशी व चतुर्दशी व्रत के दिन होते हैं। जो लोग इन व्रतों को पूरे वर्ष नहीं कर पाते, चातुर्मास के दौरान अवश्य व्रत करते हैं। चातुर्मास बरसात के चार मास को कहा जाता है जो आषाढ़ से आरम्भ होकर कार्तिक माह में पूरा होता है।[९]

८. गोम्मटेश्वर का मस्तकाभिषेक

कर्णाटक राज्य में स्थित श्रवणबेलगोल में गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति का महामस्तकाभिषेक दिगम्बर जैनों का महत्वपूर्ण धार्मिक आयोजन है। यह मस्तकाभिषेक १२ वर्षों के अन्तराल पर एक बार होता है। गोम्मटेश्वर प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ के पुत्र बाहुबलि की मूर्ति है जो लगभग ९८३ ईस्वी में एक शिलाखण्ड को तराश कर बनाई गई है। इस मूर्ति को विश्व का आश्चर्य माना जाता है क्योंकि यह अपने आप में एक अनूठी कृति है तथा एक ही पत्थर को तराश कर ५७ फीट ऊंची मूर्ति बनाई गई है।[१०]

९. दीपावली

कुछ ऐसे त्यौहार हैं जिन्हें जैन हिन्दुओं के साथ मनाते हैं। ऐसे त्यौहारों में दीपावली अत्यधिक महत्वपूर्ण व धार्मिक त्यौहार है। जैनों में इसके सम्बन्ध में मान्यता भिन्न है। जैनों के अनुसार उनके अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर स्वामी का निर्वाण कार्तिक मास की अमावस्या को हुआ था। अतः महावीर निर्वाण के उपलक्ष में दीपावली मनाई जाती है। **हरिवंश पुराण** में इस सम्बन्ध में लिखा है कि 'महावीर भगवान भव्य जीवों को उपदेश देते हुए पावा नगरी में पधारे, और वहां के एक मनोहर उद्यान में चतुर्थ काल में तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी रह जाने पर कार्तिकी अमावस्या के प्रभातकालीन सन्ध्या के समय, योग का निरोध करके, कर्मों का नाश करके मुक्ति को प्राप्त हुए। चारों प्रकार के देवताओं ने आकर उनकी पूजा की और दीपक जलाए। उस समय उन दीपकों के प्रकाश से पावानगरी का आकाश प्रदीप्त हो रहा था। उसी समय से भक्त लोग जिनेश्वर की पूजा करने के लिए भारतवर्ष में प्रतिवर्ष उनके निर्वाण दिवस के उपलक्ष में दीपावली मनाते हैं'।[११]

जैनों की यह मान्यता है कि महावीर स्वामी के निर्वाण के साथ ही ज्ञान की जो ज्योति बुझ गई थी उसे पुनः प्रज्ज्वलित करने के लिए इस दिन दीपक जलाए जाते हैं। महावीर स्वामी द्वारा निर्वाण प्राप्त करने की स्मृति में जैन मतावलम्बी इस दीपों के त्यौहार को मनाते हैं। जैनों में प्रचलित वीर निर्वाण संवत् इसी दिन से आरम्भ हुआ

था। दीपावली के दिन प्रातः काल सभी जैन मन्दिर जाते हैं। इस दिन महावीर स्वामी की प्रतिमा के समक्ष लड्डुओं का नैवेद्य चढ़ाया जाता है। इस प्रकार की पूजा का आयोजन केवल इसी दिन होता है। इस नैवेद्य को निर्वाण लाडू कहा जाता है। इस दिन विशेष पकवान बनाते हैं तथा रात्रि को लक्ष्मी पूजन भी करते हैं जो हिन्दू विधि से ही की जाती है।[१२]

१०. रक्षा बन्धन

हिन्दुओं के साथ विशेष रूप से जैनों द्वारा मनाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण महान त्यौहार रक्षाबन्धन भी है। इस दिन ब्राह्मणों द्वारा राखी बंधवाने की भी प्रथा प्रचलित है। राखी बांधते समय वे जो श्लोक पढ़ते हैं वह इस प्रकार है-

'येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबली।
तेन त्वामपि बध्नामि रक्ष मा चल मा चल।।'

अर्थात् जिस राखी से दानवों का इन्द्र महावलि बलिराज बांधा गया उससे मैं भी तुम्हें बांधता हूं। मेरी रक्षा करो उससे डिगना नहीं।[१३] यह सह धर्मियों के मध्य लगाव की भावना की शिक्षा देता है। जैन भी इसे श्रावण मास की पूर्णमासी को मनाते हैं। जैनों में ऐसी मान्यता है कि इस दिन तपस्वी विष्णुकुमार ने अपने आध्यात्मिक ज्ञान से ७०० जैन साधुओं को मानव बलि की पकड़ से मुक्त करवाया था, जो मानव बलि हस्तिनापुर के राजा वलि ने आयोजित की थी। इस प्रकार जैन साधुओं की रक्षा के उपलक्ष में तथा महान साधु विष्णु कुमार के सम्मान में यह त्यौहार प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इस दिन मुनि विष्णु कुमार की पूजा होती है। इससे जैनों को यह भी प्रेरणा मिलती है कि वे अपनी मूर्तियों, मन्दिरों, सन्यासियों व संस्थानों पर आक्रमण होने की स्थिति में इनकी रक्षा के प्रयास करें।[१४]

११. अक्षय तृतीया

दीपावली व रक्षाबन्धन की तरह अक्षय तृतीया भी हिन्दू व जैन दोनों के द्वारा मनाई जाती है। अक्षय तृतीया वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया के दिन मनाई जाती है। जैन इसे अत्यधिक पवित्र और मांगलिक दिन मानते हैं। जैनों के अनुसार इस दिन उनके प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने छह माह के निरन्तर उपवास के बाद हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस के हाथों गन्ने के रस के रूप में आहार ग्रहण किया था। इस दिन भगवान ऋषभदेव की पूजा होती है तथा इनकी प्रतिमा का गन्ने के रस

से अभिषेक किया जाता है। इस दिन लोग दान करते हैं। जैसे राजा श्रेयांस ने भगवान ऋषभदेव को गन्ने का रस भेंट कर पुण्य प्राप्त किया था उसी प्रकार जैन मतानुयायी इस दिन उपयुक्त पात्र को भेंट देकर पुण्य प्राप्त करना चाहते हैं।[१५]

जैनों के उपरोक्त व्रतोत्सवों के विवरण से एक बात तो स्पष्ट है कि जैनों के अपने व्रतोत्सव हैं। इनमें से कुछ तो पूर्णतः जैन समुदाय विशेष के हैं जबकि कुछ वे हिन्दुओं के समान ही मनाते हैं। हिन्दुओं के त्यौहारों के साथ मनाए जाने वाले त्यौहारों का महत्व जैनों में अलग ही होता है, या यूं कहें कि यह महज एक संयोग ही है कि दीपावली, रक्षा बन्धन, अक्षय तृतीया, अनंत चतुर्दशी के पवित्र दिन जैन धर्म से सम्बन्धित घटनाएं भी घटीं जिनके सम्मान में जैन मतावलम्बी भी इन त्यौहारों को मनाने लगे हैं। कर्णाटक के जैन धर्मानुयायी गणेश चतुर्थी को मनाते हैं तथा इस दिन गणाधिपति के नाम से संत गौतम की पूजा करते हैं। इसी प्रकार वे स्थानीय ब्राह्मणों द्वारा पूजे जाने वाले बैंक्टरामन के स्थान पर भरतराजा की पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त सभी जैन लौकिक हिन्दू त्यौहारों जैसे दशहरा, मकर संक्रांति, होली इत्यादि को भी मनाते हैं जिसका उनके धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि जैन और हिन्दुओं के मध्य भारी समीपता विद्यमान है। जैन लौकिक त्यौहारों को हिन्दुओं के साथ जुड़े सामाजिक जीवन के कारण मनाते हैं। गुजरात और राजस्थान के कुछ जैन समुदायों की स्त्रियां शीतला माता की पूजा भी करती हैं। अब धीरे-धीरे इस प्रथा को जैन धर्म विरोधी मानते हुए रोका जा रहा है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि जैन रामनवमी, गोकुलाष्टमी (जन्माष्टमी) तथा महाशिवरात्रि जैसे हिन्दुओं के त्यौहारों को नहीं मनाते हैं। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि जैन हिन्दुओं के जिन त्यौहारों को मनाते हैं उनका महत्व उनकी गाथाओं में हिन्दुओं से पृथक् है। ये एक मिली-जुली भारतीय संस्कृति का पालन करते हैं।

सन्दर्भ

१. लाला राम शास्त्रीः **षोडस संस्कार**, जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता १६२४

२. एस. आर. दासः **द जैन स्कूल ऑफ स्टोनामी**, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, वाल्यूम ८, पृ. ३०-४२; कैलाशचन्द्र शास्त्रीः **जैन धर्म**, भारतीय दिगम्बर जैन संघ, मथुरा, १६७५, पृ. ३२७-३२८

३. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, पूर्वोक्त, पृ. ३२८-३२६; ४. वही, पृ. ३२६

५. विलास ए. सांगवेः **जैन कम्यूनिटीः ए सोशल सर्वे,** पापुलर प्रकाशन, बाम्बे, १६८०, पृ. २३६

६. सुमेरचन्द्र दिवाकरः **जैन शासन,** श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा प्रकाशन विभाग, डीमापुर (नागालैण्ड) १६८३, पृ. २५७

७. वही, पृ. २६७-७० एवं पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, पूर्वोक्त, पृ. ३३०

८. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री : **जैन धर्म,** पूर्वोक्त, पृ. ३३१

६. विलास ए. सांगवे, पूर्वोक्त, पृ. २३६

१०. हीरालाल जैनः **जैन शिलालेख संग्रह भाग प्रथम,** मुम्बई, १६२८, पृ. ३३-३४

११. कैलाशचंद्र शास्त्रीः **जैन धर्म,** पूर्वोक्त, पृ. ३३१-३३४; **हरिवंश पुराण,** सर्ग ६६, १५-२१

१२. डॉ. त्रिलोकचन्द कोठारीः **दिगम्बर जैन समाज वैचारिक विकास एवं सामाजिक दर्शन (बीसवीं शताब्दी का समीक्षात्मक अध्ययन),** अप्रकाशित शोध ग्रंथ, पृ. १५६

१३. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, पूर्वोक्त, पृ. ३३४-३३७

१४. सुमेरचन्द्र दिवाकरः **जैन शासन,** पूर्वोक्त, पृ. २६२

१५. वही, पृ. २६४-२६६ एवं डॉ. त्रिलोकचन्द कोठारी, पूर्वोक्त, पृ. १५६-५७

(इस विषय पर डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तक Religion and Culture of the Jains के पृष्ठ १३६-१४६ भी दृष्टव्य हैं।)

- २/२ पारसी मोहल्ला,
छावनी, इन्दौर (म.प्र.)

व्यापक चेतन खोज रहा हूँ

तुम अपना तन दिखलाते हो
मैं तो मन को खोज रहा हूँ,
धरती के कण-कण में बिखरा
व्यापक चेतन खोज रहा हूँ।।
तुम फूलों को कांट छांट कर
हो उसका विश्लेषण करते,
उनके रंग रूप तत्वों की
गुणवत्ता का अध्ययन करते,
मैं फूलों की मुस्कानों में
खिलता यौवन खोज रहा हूँ।
धरती के कण-कण में बिखरा
व्यापक चेतन खोज रहा हूँ।।
विज्ञान जगत के तत्वों की ही
विस्तृत व्याख्या है कर पाया,
और उन्हीं के विविध रूप में
वह परिवर्तन है ला पाया,
अन्तर को भी बदल सके जो
मैं वह साधन खोज रहा हूँ।
धरती के कण-कण में बिखरा
व्यापक चेतन खोज रहा हूँ।।
तुम अपने प्रचार माध्यम से
बेशक हो इस जग पर छाये,
तुम्हें देवता हैं सब कहते
तुम सबके मन को हो भाये,
मैं तो इस विस्तृत धरती पर
स्वार्थ रहित मन खोज रहा हूँ।
धरती के कण-कण में बिखरा
व्यापक चेतन खोज रहा हूँ।।
मेरा ईश्वर मिला न मुझको
मन्दिर मस्जिद गिर्जाघर में,
गुरुद्वारे में और जगत के
कहीं किसी भी पूजा घर में,
अब तो मैं अपने ईश्वर को
अन्तर्मन में खोज रहा हूँ।
धरती के कण-कण में बिखरा
व्यापक चेतन खोज रहा हूँ।।
कर्मों की इस भव धारा में
हम युग-युग से बहते आये,
जन्म-जन्म में इनके कारण
कष्ट असीमित सहते आये,
मुक्त कर सके जो कर्मों से
मैं वह आतम खोज रहा हूँ।
धरती के कण-कण में बिखरा
व्यापक चेतन खोज रहा हूँ।
तुम अपना तन दिखलाते हो।
मैं तो मन को खोज रहा हूँ।।

- डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत'
डी ११/६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

तीर्थक्षेत्रों पर सुरक्षा का अभाव : तीर्थक्षेत्र सोनागिर (एक सत्यकथा)

- श्रीमती सितारा जैन

कल्पनायें बहुत मधुर और आकर्षक होती हैं, यथार्थ से कोसों परे। सुख की चाह में मनुष्य भूल जाता है स्वयं के विवेक को और अंधविश्वास तथा रूढ़ियों में जकड़े रहने के कारण सुखों के बदले दुःखों को निमंत्रण देता है। ऐसी ही कहानी है हमारे समाज की जो नित्य नये निर्माण का श्रेय लेना चाहता है और पुरातन को अनदेखा कर रहा है।

तीर्थक्षेत्र सोनागिर, स्टेशन से दूर बस्ती में स्थापित है। दिसम्बर माह का अंत शीत की शीतल बयार बह रही थी, ग्वालियर में अपने सरकारी कार्यों से निवृत होकर प्रौढ़ महिला ने सोनागिर जाने का मन बनाया, रात्रि का समय था, ट्रेन को सुबह सोनागिर पहुँचना था। रात्रि की ट्रेन से महिला सोनागिर के लिए रवाना हुई और सुबह करीब चार बजे सोनागिर स्टेशन आ गया। उसने कुली को आवाज दी, कुली, पर वहाँ पर कोई न था सिर्फ एक मजदूर काम कर रहा था। मजदूर से कह कर उसने अटैची और बैग स्टेशन पर रखवाया। पत्थर की बैंच पर सामान रखकर मजदूर जाने लगा तो उसने सामान स्टेशन मास्टर के आफिस में रखवाया और कहा कि सुबह दर्शन के लिए जाते समय सामान उठवा लेंगे। सुबह होने में देर थी, महिला पत्थर की बेंच पर लेट गई, यात्रा की थकान से उसकी आँखों में नींद आने लगी, तभी उसे कुछ कदमों की आहट सुनाई दी जिससे वह जाग गई। उसने देखा कि स्टेशन मास्टर नशे में धुत बेंच के चारों ओर चक्कर काट रहा है। उसके आफिस में अलाव जल रहा था और नशे में धुत कर्मचारियों के हा हा, हू हू की आवाजें आ रही हैं। अकेली महिला घबरा गई और किसी अनिष्ट की आशंका से उसका दिल कांप उठा, सोचने लगी यदि ऐसा मालूम होता तो वह यहाँ कदापि रात्रि की ट्रेन से न आती। सांय सांय, भांय भांय से सारा वातावरण भयभीत हो रहा था। उसने ईश्वर का स्मरण किया, तभी उसने देखा कि दो युवक कुछ सामान सहित स्टेशन के फाटक के पास आये और फाटक खोलकर सामान रखकर वहीं बैठ गये, सुबह होने में अभी काफी देर थी। युवक दर्शनार्थी थे और सुबह की प्रतीक्षा कर रहे थे, सुबह होने पर वाहन आते थे और लोगों को बस्ती में ले जाते थे, जहां पर मंदिर बने हुए थे। महिला जाकर उनके पास बैठ गई और कहा कि वह भी उनके साथ ही दर्शन करने जायेगी। अब वह आश्वस्त

थी। वहीं पर विश्राम करने के बाद सुबह होने लगी और वाहन आने शुरू हो गये। महिला युवक के साथ सामान लेने स्टेशन मास्टर के आफिस पहुंची तो स्टेशन मास्टर ने सामान देने से इंकार कर दिया, कहा, "तुम स्वयं ही यहां आकर सामान उठाओ और ले जाओ"। महिला घबरा गई तभी युवक ने कहा "अम्मा तुम बाहर ही रहो मैं सामान उठाकर लाता हूँ"। तब वह बिना कुछ कहे आफिस में घुसा और दौड़कर सामान लेकर आ गया।

महिला युवकों के साथ तांगे पर तीर्थ के दर्शन करने गई, दर्शन करने के पश्चात् उन्होंने महिला को ट्रेन पर बिठा दिया और स्वयं वे भी ट्रेन में बैठकर चले गये। यह है हमारे तीर्थ क्षेत्रों की व्यवस्था ? जहाँ पर न कोई सुरक्षा है, न इंतजाम। अनकहे प्रश्नों का जवाब क्या है ?

- १, देवयानी काम्पलेक्स, गढ़ा रोड,
जयनगर, जबलपुर- ४८२००२

सामयिक परिदृश्य

क्षणिकाएं

प्रचार-प्रबंधन में प्रवीणता है हमारी
मूढ़ भक्तों की भीड़ शक्ति हमारी
पुण्य वितरण करने वाले सागर हम,
महावीर से अधिक होती भक्ति हमारी।।१।।

दक्षिणा सहित पाद-प्रक्षाल होता हमारा,
और नित्य उतारी जाती आरती हमारी।
घर-घर जाकर शुद्र कर दिया घरों को,
हमारे सम्मुख झूमते-नाचते नर-नारी।।२।।

हर चौराहे पर भव्य पोस्टर लगते हैं हमारे
त्रिमूर्तिवत तीन चित्र एक साथ प्रदर्शित होते हमारे
अपरिग्रही हम, चाहते कम करना परिग्रह औरों का,
हमारे निमित्त भक्तगण श्वेतश्याम धन खूब खर्च करते बेचारे।।३।।

- रमा कान्त जैन

चिन्तन-कण

स्वार्थ से बोझिल हुआ संसार है।
आदमी दुख-दर्द से लाचार है।।
अब कहाँ महफिल कहाँ रंगीनियां,
प्रीति का छोटा हुआ परिवार है।।

अब समय वह लौट कर आना नहीं।
घर किसी के प्रेम से जाना नहीं।।
'पॉप' गायन में लगे जो सिर फिरे-
उनको 'ठुमरी' 'दादरा' गाना नहीं।।

अब सिआसत के बिना कुछ भी नहीं।
लाख चाहें पर दवा कुछ भी नहीं।।
जो परिश्रम रात दिन करते रहे।
हाथ उनके तो लगा कुछ भी नहीं।।

हो गये बलिदान जो, थे सिर फिरे।
'बोस' 'सावरकर' नज़र से हैं गिरे।।
वक्त का बदलाव यह कैसा अरे!
जो विदूषक आज लोगों से घिरे।।

स्वर्ण महंगा हो गया चाँदी नहीं।
थम सकी महंगाई की आँधी नहीं।।
बढ़ गये जिन्ना बहुत इस देश में,
बन सका कोई मगर गाँधी नहीं।।

- डॉ. परमानन्द जड़िया
१८६/५१, खत्री टोला,
मशकगंज, लखनऊ-१८

भावना का व्यवहार नय और निश्चय नय स्वरूप

- श्री मनोहर मारवडकर

'भगवती आराधना में भावना स्वरूप विचार' यह लेख **शोधादर्श** ६१, पृ. २७ पर पढ़ा और उस पर कुछ विचार करने पर निम्न चिंतन प्रगट होता है।

१. संक्लिष्ट भावनायें हेय हैं, पाप बन्ध कारक है अतः उन्हें छोड़ने का उपदेश है।

२. असंक्लिष्ट भावनायें शुभ रूप होने से प्रशस्त रागरूप हैं, उनसे आत्मा में शुद्धता प्रगट होती है। जब ये भावनायें प्रशस्त रागरूप हैं वह राग भी पुण्य बंध करने वाला है। ऐसा राग शुद्धता को प्रकट करने वाला नहीं हो सकता। वैसे ये भावनायें स्वयं शुद्धता आने पर उनकी सहायक रूप में शुभराग रूप प्रकट होती हैं। वे स्वयं शुद्धता रूप नहीं हैं। वे प्रमाद अवस्था में मुख्य रूप में मुनियों में और गौणरूप से श्रावकों में आती हैं और फिर से शुद्धतारूप अकषाय स्वरूप शुद्धोपयोग में जाने को सहायता करती हैं।

जैसे **तपभावना** में इच्छाओं का निरोध करना यह तप कहा है। शुभ राग रूप में कषायों का निरोध न होकर या इच्छाओं का निरोध न होकर शुभ राग या शुभ इच्छायें पैदा होती हैं। **श्रुत भावना** में भी आगम-अभ्यास को श्रुत भावना कहने का वर्णन है जिसमें वास्तविक श्रुत-आगम का अभ्यास ज्ञान के अभ्यावृत्ति रूप पुनरावृत्ति से उत्पन्न संस्कार आत्मगुण के अभ्यास शब्द से कहा जाता है। (**न्यायदर्शनसूत्र** मूल ३२/४३) अर्थात् निजात्मा में श्रुत का अवतरण करना अर्थात् आत्मगुणों में उसे ढालना यह अभ्यास है। **समाधि शतक** श्लोक ३७ में आचार्य पूज्यपाद कहते हैं कि अविद्याभ्यास के संस्कारों से मन चंचल होता है किंतु वही ज्ञान के संस्कारों से ज्ञान स्वभाव में अपनापन और शेष में परायापन आता है। इससे स्वयं मन आत्मस्वरूप में स्थिर होता है। **सागारधर्मामृत** अध्याय, ५ श्लोक ३२ में आशाधर जी कहते हैं कि सामायिक जो शुद्धोपयोग रूप है वह अत्यन्त कष्टसाध्य है वह अभ्यास से ही प्राप्त होती है। **धवल टीका** पुस्तक १३ अ. ५/४/२६ गाथा २३-२४ में भी इसी प्रकार

कहा है। वह कहता है कि ज्ञान में निखार अभ्यास से मनोनिग्रह और विशुद्धि प्राप्त होती है।

सत्त्व भावना भी जब तक सत्त्वेषु मैत्री अर्थात् सब जीवों में समानता अनुभूत नहीं होती तब तक इस लेख में वर्णित निर्भयता आ नहीं सकती। अतः वह निर्भयता आने हेतु सत्त्व भावना के लिये सत्त्वेषु मैत्री भावना अनुभव के आधार पर ही शक्य है।

एकत्व भावना में तो निश्चित रूप में मैं एक नित्य शाश्वत ज्ञानदर्शन स्वरूप हूं शेष सर्व संयोगमूलक हैं और दुःख के कारण हैं (**लघु सामायिक पाठ**)। इसी तरह **धृति भावना** में तो यह धृति या धैर्य स्वयं के एकत्व स्वरूप में पूर्णता का अनुभव हुए बिना आ नहीं सकता।यह धृति या धैर्य संतोष भावना से वर्णित है। यह संतोष स्वयं में सिद्धों सम पूर्णता के अनुभव बिना आ नहीं सकता। और यह संतोष स्वात्मानुभव के विना नहीं हो सकता।

भावना का अर्थ जो **राजवार्तिक** (**तत्त्वार्थवार्तिक** ७/३/१) के आधार से इस लेख में डॉ. जैनमती जी ने प्रारंभ में दिया है, उससे यह स्पष्ट है कि वीर्यान्त राग कर्म का क्षयोपशम अर्थात् शक्ति की प्रकटता और चारित्र मोहनीय के उपशम, क्षय, क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली भावना यह शुभराग रूप तव ही प्रगट होगी जब उपशम, क्षय, क्षयोपशम से उत्पन्न शुद्धता के साथ होगी। शुद्धता प्रकटते ही अनुप्रेक्षा रूप भावनायें प्रगटती हैं।

अतः अंतिम परिच्छेद में जो निष्कर्ष निकाला गया है कि भावनाओं से व्यवहार मोक्षमार्ग प्राप्त किया जा सकता है, परमार्थ मोक्षमार्ग पर चलने का प्रयत्न किया जाता है। इसका अर्थ व्यवहार मार्ग निश्चय मार्ग को प्राप्त करने का साधन है। किंतु उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि व्यवहार मोक्षमार्ग जो शुभ राग रूप है, वह निश्चय मोक्ष मार्गरूप सम्यग्रत्नत्रय रूप है उसका मूल जो शुद्धोपयोग या आत्मानुभव के प्राप्त होने पर ही सम्यक् होता है। इसके बिना 'पैं निज आतमज्ञान विना सुख लेश न पायो।' ऐसे द्रव्यलिंगी मुनि के समान संसार वर्धक ही है, वह व्यवहाराभास ही हैं। अतः दोनों का साथ आवश्यक है।

- 'स्वधर्म', १७ (ब) महावीर नगर,
नागपुर- ६

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००६-२००७

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., का गठन सन् १६७६ ई. में २४वें तीर्थंकर भगवान वर्धमान महावीर स्वामी का २५००वां निर्वाण महोत्सव वर्ष मनाने के लिए राज्य सरकार द्वारा गठित श्री महावीर निर्वाण समिति, उ.प्र., की उत्तराधिकारी संस्था के रूप में जैन धर्म की सभी आम्नायों के महानुभावों के सहयोग से किया गया था तथा गठन के तुरंत बाद ही उसे सोसायटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड करा लिया गया था जिसका नियमानुसार नवीनीकरण कराया जाता रहा है। समिति का पिछला प्रगति प्रतिवेदन (वर्ष २००५-२००६) **शोधादर्श-५६** (जुलाई २००६) के पृष्ठ ५५-६० पर प्रकाशित है। यहां वर्ष २००६-२००७ (१ अप्रैल, २००६ से ३१ मार्च, २००७) का प्रगति प्रतिवेदन प्रस्तुत है।

आलोच्य वर्ष में समिति की प्रवृत्तियों की प्रगति निम्नवत रहीः-

१. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय

पुस्तकालय की स्थापना वर्ष १६७६ की श्रुत पंचमी को की गई थी और इसका विधिवत उद्‌घाटन २३ अक्टूबर, १६७६ को प्रदेश के तत्कालीन ग्राम्य विकास मंत्री माननीय डॉ. रामजीलाल सहायक के करकमलों से सम्पन्न हुआ था। पुस्तकालय और उससे संलग्न वाचनालय श्री मुन्नेलाल कागजी धर्मशाला ट्रस्ट द्वारा भूतल पर किराये पर उपलब्ध कराये गये कक्षों में चल रहा है। समिति के सदस्यों के अतिरिक्त पुस्तकालय के अपने सदस्यों की संख्या ६६ रहीं। चारबाग ही नहीं, आसपास की कालोनियों के जै. [illegible]रिवार तथा अनेक जैनेतर जिज्ञासु महानुभाव भी पुस्तकालय के सदस्य हैं। पुस्तकालय में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि के अध्ययन हेतु जैन धर्म की सभी आम्नायों का साहित्य तथा शोधार्थियों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के लिए अन्य भारतीय धर्मों, दर्शनों एवं संस्कृति से सम्बंधित महत्वपूर्ण साहित्य है। अपने विशिष्ट संकलन के लिये इन विषयों के शोधार्थी पाठकों में हमारा पुस्तकालय विशेष लोकप्रिय है तथा लखनऊ व कानपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध अनेक शोध छात्र इससे लाभ उठाते हैं। सामान्य रुचि के पाठकों के लिए लौकिक एवं सामान्य ज्ञानवर्धक साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

वर्ष २००६-०७ में पुस्तकालय में ३३२ पुस्तकों की वृद्धि हुई जिनमें से २७५ पुस्तकें तथा स्टील के दो बुक केस राजा राममोहनराय पुस्तकालय प्रतिष्ठान कोलकाता से प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग (पुस्तकालय कोष्ठक) के माध्यम से पुस्तक अनुदान के रूप में प्राप्त हुए। शेष पुस्तकें अन्य महानुभावों से भेंट स्वरूप प्राप्त हुईं।

शोध पुस्तकालय के वाचनालय में ६७ धार्मिक, सामाजिक, सामयिक एवं शोध पत्र-पत्रिकाएं (साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक और षट्मासिक) समिति की शोध-पत्रिका **'शोधादर्श'** के परिवर्तन में प्राप्त हुईं।

पुस्तकालय-वाचनालय से प्रतिदिन प्रायः ५० पाठक लाभ उठाते हैं। पुस्तकालय-वाचनालय का समय प्रातः ६.०० से अपराह्न २.०० बजे तक है। शनिवार और सार्वजनिक अवकाश पर पुस्तकालय-वाचनालय बन्द रहता है। पुस्तकालय-वाचनालय का कार्य पूर्ववत पुस्तकालय व्यवस्थापिका श्रीमती हेमा सक्सेना, एम.ए., द्वारा सुचारू रूप से देखा जाता रहा।

२. शोधादर्श

जैन विद्या की शोध को समर्पित चातुर्मासिक शोध-पत्रिका **'शोधादर्श'** का प्रकाशन फरवरी १६८६ में समिति द्वारा प्रथम अंक के प्रकाशन से प्रारंभ किया गया था। इसके आद्य सम्पादक इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन थे। जून १६८८ में उनके स्वर्गवास के उपरान्त अंक ७ से प्रधान सम्पादक का उत्तरदायित्व डॉ. शशि कान्त ने बड़ी योग्यता से निभाया तथा अंक ३० (नवम्बर १६६६) से अंक ५६ तक प्रधान सम्पादक का कार्यभार श्री अजित प्रसाद जैन ने बड़ी कुशलतापूर्वक संपादित किया। इस पत्रिका के सम्पादन से यद्यपि मैं प्रारंभ से ही सम्बद्ध रहा, आदरणीय श्री अजित प्रसाद जैन के निधन के उपरांत अंक ५७ (नवम्बर २००५) से इसके सम्पादन का सम्पूर्ण दायित्व मैं डॉ. शशि कान्त जी के मार्गदर्शन तथा सर्वश्री नलिन कान्त जैन, सन्दीप कान्त जैन एवं अंशु जैन 'अमर' के सहयोग से निर्वहन कर रहा हूँ। यह सन्तोष का विषय है कि पत्रिका की लोकप्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है तथा आज यह पत्रिका देश की उच्च्व स्तरीय धार्मिक-सांस्कृतिक शोध पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। **दिशा बोध** (मासिक, कोलकाता) द्वारा वर्ष २००६ में कराये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार **शोधादर्श** प्रबुद्ध वर्ग की बीस पसंदीदा जैन पत्रिकाओं में स्थान रखती है। समय से प्रकाशित वर्ष के तीनों अंकों (५८-५६-६०)

में २७२ पृष्ठों में प्रकाशित ज्ञानप्रद उपयोगी, पठनीय सामग्री की प्रबुद्ध वर्ग द्वारा व्यापक सराहना हुई है। अंक ५८ गोम्मटेश्वर बाहुबलि भगवान के फरवरी २००६ ई. में सम्पन्न महामस्तकाभिषेक को तथा अंक ६० **शोधादर्श** की षष्ठिपूर्ति को समर्पित रहा। **शोधादर्श** में निहित निर्भीक बेबाक टिप्पणियों, शोधपूर्ण सामग्री तथा इसकी सादगीपूर्ण छवि से प्रभावित हो कुछ प्रशंसक पाठकों ने इस वर्ष रु. ६,८८६/- की राशि भेंट स्वरूप प्रदान की। अनेक गणमान्य विद्वान लेखक-रचनाकार इसमें अपने लेख-रचना आदि प्रकाशित होना अपना अहोभाग्य मानते हैं और पत्र-पत्रिकाएं इसमें प्रकाशित सामग्री को उद्धृत करने में गौरव का अनुभव करती हैं। इस वर्ष छुटपुट सहायता के अतिरिक्त जिन महानुभावों से **शोधादर्श** के लिए विशेष सहायता प्राप्त हुई उनमें उल्लेखनीय हैं- जस्टिस एम.एल. जैन (जयपुर), श्रीमती सितारा देवी जैन (जबलपुर), श्री भरत कुमार मोदी (इन्दौर), प्राचार्य के. डी. मिश्रीकोटकर (चांदुरबाजार), श्री प्रवीन कुमार जैन (नई दिल्ली), श्री वीरेन्द्र कुमार जैन (गाजियाबाद) तथा श्री सतीश कुमार जैन (नई दिल्ली)।

३. तीर्थंकर छात्र सहायता कोष

इस वर्ष आर्थिक दृष्टि से निर्बल ५० छात्र-छात्राओं को अध्ययन जारी रखने हेतु आंशिक सहायता प्रदान करने पर रु. १८,१०२/- का व्यय किया गया। हमारे उप मंत्री श्री महेन्द्र प्रसाद जी ने इस कार्य के सम्पादन में बहुमूल्य योगदान किया जिसके लिए मैं उनका विशेष आभारी हूँ।

४. महावीर जन कल्याण निधि

इस वर्ष तीन असहाय धर्मनिष्ठ महिलाओं को वस्त्र-औषधि हेतु सहायता प्रदान करने पर ~ २,११३/- का व्यय किया गया। हमारे संयुक्त मंत्री श्री नलिन कान्त जी ने इस निधि का कार्य सम्पादन करने में बहुमूल्य योगदान किया जिसके लिये मैं उनका आभारी हूँ।

५. अन्य प्रवृत्तियां

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, १ जून, २००६ ई. को 'श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस' तथा २५ जून, २००६ ई. को तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के संस्थापक-महामंत्री स्व. श्री अजित प्रसाद जैन की प्रथम पुण्यतिथि श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में मनायी गयी। ३० जुलाई, २००६ ई. को समिति

की साधारण सभा की बैठक में प्रबन्ध समिति के पदाधिकारियों एवं सदस्यों का सर्वसम्मति से आगामी तीन वर्ष के लिये निर्वाचन हुआ। १ जनवरी, २००७ ई. को संस्थापक-महामंत्री स्व. श्री अजित प्रसाद जैन का उनके ६०वें जन्म दिन पर पुण्य स्मरण किया गया।

दिनांक ५ जून, २००६ ई. को रजिस्ट्रार सोसायटीज, उ.प्र., से दिनांक २६-३-२००६ से पांच वर्ष की अवधि के लिये समिति के नवीकरण का प्रमाणपत्र संख्या ३०४/२००६ (फाइल सं. I ३७६६३) प्राप्त हुआ।

दिनांक २८ जुलाई, २००६ ई. को जिला विद्यालय निरीक्षक, लखनऊ, को वर्ष २००६-२००७ के अनुदान हेतु निर्धारित प्रपत्र पर प्रार्थना पत्र भेजा गया। दिनांक १० अगस्त, २००६ ई. को रजिस्ट्रार सोसायटीज, उ.प्र., लखनऊ को समिति की साधारण सभा की बैठक दिनांक ३० जुलाई, २००६ में प्रबंध समति के पदाधिकारियों एवं सदस्यों के सर्वसम्मति से सम्पन्न निर्वाचन से अवगत कराया गया तथा समिति के वर्ष २००५-०६ के वार्षिक प्रतिवेदन एवं सम्परीक्षित लेखे की प्रतिलिपि भेजी गई। दिनांक १५ सितम्बर, २००६ ई. को वित्तीय वर्ष २००५-०६ (असेसमेन्ट वर्ष २००६-०७) का इनकम टैक्स रिटर्न जमा किया गया। दिनांक १२ जनवरी, २००७ को रजिस्ट्रार, सोसायटीज, उ.प्र., लखनऊ को प्रबन्ध समिति की वर्ष २००७ की सूची प्रेषित की गई। दिनांक १८ फरवरी, २००७ ई. को राजा राममोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान के क्षेत्रीय अधिकारी श्री बी.एस. पोसवाल द्वारा पुस्तकालय का निरीक्षण किया गया। दिनांक २२ फरवरी, २००७ को उ.प्र. कोआपरेटिव बैंक, नाका हिण्डोला, लखनऊ में फार्म १५-जी दाखिल किया गया।

६. लेखे की स्थिति

समिति के लेखों का आडिट इस वर्ष भी ए. जिन्दल एण्ड कम्पनी, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स, द्वारा किया गया और उनके माध्यम से आयकर कार्यालय विवरणी प्रस्तुत की गई।

शासन से प्राप्त उपर्युक्त पुस्तक अनुदान और स्टील बुक केसों तथा कतिपय दाताओं से भेंट स्वरूप प्राप्त साहित्य के अतिरिक्त कुल प्राप्तियां वर्ष में रु. ६५,४७४-८७ पैसे रही (इसमें रु. ६००/-. पुस्तकालय सिक्योरिटी मनी भी है जो रिफन्डेबिल है) तथा व्यय रु. ७५,८५५-०० पैसा हुआ (इसमें पुस्तकालय-वाचनालय

कक्षों का रु. ८०० प्रतिमास की दर से किराया रु. ६,६०० सम्मिलित नहीं है क्योंकि उसका समायोजन श्री मुन्नेलाल कागजी धर्मशाला ट्रस्ट को पूर्व में दी गई एक लाख रुपये की अग्रिम धनराशि से होता है)। प्राप्ति-व्यय की विवरण तालिका संलग्न है।

समिति के शोध पुस्तकालय में वर्ष के अन्त में ३१ मार्च, २००७ ई. को दो लाख रुपये से अधिक मूल्य का साहित्य एवं फर्नीचर आदि उपलब्ध रहा।

चिरवियोग

इस वर्ष **'शोधादर्श'** पत्रिका से अनुराग रखने वाले उसके कई प्रबुद्ध पाठक-लेखक उससे सदा के लिए बिछुड़ गये। उनमें उल्लेखनीय हैं-

२७ मार्च, २००६ को शाकाहार प्रचारक श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, नई दिल्ली; ८ अप्रैल को श्रीमती सुधा जिन्दल, लखनऊ; १८ जुलाई को लखनऊ में पत्रकार शिरोमणि श्री ज्ञानचन्द जैन; २४ नवम्बर को आरा में श्री सुबोध कुमार जैन; १ जनवरी, २००७ को दिल्ली में पं. पद्मचद्र शास्त्री; ३ जनवरी को लखनऊ में श्री सौभाग्यमल जैन काला; २८ जनवरी को पचेवर में श्री ताराचन्द जैन अग्रवाल तथा ३१ जनवरी को रीवा में डॉ. नन्दलाल जैन। इन सभी दिवंगत आत्माओं द्वारा समय-समय पर **शोधादर्श** को दिये गये सक्रिय सहयोग को स्मरण करना अभीष्ट है।

आभार

समिति के अध्यक्ष सम्माननीय श्री लूणकरण जी नाहर का सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन मुझे निरन्तर मिलता रहा जिसके लिये मैं उनका विशेष आभारी हूँ। उपाध्यक्ष श्री कन्हैयालाल जी एवं श्री नरेशचन्द्र जी, कोषाध्यक्ष श्री बिजयलाल जी, संयुक्त मंत्री श्री नलिन कान्त जी, उपमंत्री श्री महेन्द्र प्रसाद जी और श्री रोशनलाल जी नाहर, **शोधादर्श** के सलाहकार डॉ. शशि कान्त जी एवं सह-सम्पादक श्री सन्दीप कान्त जैन व श्री अंशु जैन 'अमर' तथा प्रबन्ध समिति के सभी माननीय सदस्यों के सौहार्दपूर्ण सहयोग के लिए मैं आभारी हूँ।

समिति के कार्यों में जो कुछ भी प्रगति हुई उसका श्रेय इन सब महानुभावों को है और जो त्रुटियां रह गईं उनका दायित्व मुझ पर है।

- रमा कान्त जैन

महामंत्री

TIRTHANKAR MAHAVIR SMRITI KENDRA SAMITI, U. P.

STATEMENT OF RECEIPTS & PAYMENTS FOR THE YEAR ENDING 31st MARCH, 2007

RECEIPTS		Rs. P.	PAYMENTS		Rs. P.
Balance b/d:			Research Library:		
F.D.R.s	1861170.00		Salary Libr. Asstt	22500.00	
Savings Bank	11554.74		Salary Cleaner	1650.00	
Cash in Hand	5884.60	1878609.34	Contingencies	2341.00	
			Book Binding	90.00	
Research Library:			Stationery & Prtg.	850.50	
Security Deposit	900.00		Postage	1168.50	28600.00
Subscription	1380.00				
Donation	52.00		Magazine Expenses		25612.00
Misc. Receipts	960.00	3292.00	M.J.K. Nidhi Expenses		2113.00
Magazine:			T.C.S.Kosh Scholarship Exp.		18102.00
Subscription	2240		I.T. Counsel's Fee		650.00
Donation	6886	9126.00	Audit Fee		600.00
			Bank Charges		178.00
Membership Fee		1154.00	Balance c/d:		
Interest on F.D.R.s		80085.87	F.D.R.s	1881170.00	
Interest on Savings Bank		753.00	S.B.Account	4918.61	
Scholarship Amt. received back undelivered		723.00	Cash in Hand	12140.60	1898229.21
Postage stamps recd. with Scholarship Forms		341.00			
		1974084.21			1974084.21

Rama Kant jain
महामंत्री
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति
लखनऊ, मई ३, २००७

Complied on the basis of information and explanations furnished
For Avanish K. Rastogi & Associates
Chartered Accountants
Alok Jindal
Partner

साहित्य-सत्कार

Ancient Republics of Bharat (1100 B.C. to 173 B.C.) : by Dr. Ram Chandra Jain; Comp. by Sri Ashok Sahjananda; pub. Research Books, B-5/263 Yamuna Vihar, Delhi:- 110053; 1st ed.; pp. 268; price Rs 450/-

In his Foreword Dr. Anang Pradyumna Kumar has clarified that the author Dr. Ram Chandra Jain had carefully considered the different traditions and tried to rationally interpret the data.

The Author Dr. R.C. Jain holds that the Aryan military conquest of Bharat should be placed in c. 1100 B.C. The study is divided into two parts. Part 1 deals with the Jana Age, 1100 B.C. to 600 B.C. He calls the Aryan conquest as the conquest by the Brahamaryans . Part 2 deals with the Mahajanpada Age, 600 B.C. to 173 B.C.

The Author is critical of the approach to the history of the period as presented by the Calcutta School of historians, Dr. H.C. Raychowdhuri and Dr. R.C. Majumdar, as also the Bhartiya Vidya Bhawan series, who have tried to interpret the traditional literature from a purely Brahmanical view point. The ancient Janapada and Ganapada were a sort of oligarchical formations in which the tribal or clan chiefs formed confederations. They do not seem to have any relevance to the modern democratic and republican forms of government.

The Author has made several new points which would be of interest to the inquisitive who would like to explore the subject further. It is sad that the author is no longer with us and, therefore, it is not possible to interact with him. Mr. Ashok Sahajananda deserves congratulations for publishing it.

- Dr. Shashi Kant

Preaching Salvation : by Sri S. L. Jain; pub. Maitree Samooh, Jnanoday Vidyapeeth, Bhopal; 1st ed. 2007; pp. 107; price Rs. 50/-

During 1978 Acharya Vidyasagarji delivered discourses on the 'Seven Tattvas' (Seven realities) and the Anekant doctrine of Jain Philosophy at Siddha-Kshetra Nainagiri. The same were compiled by Muni Kshamasagarji by the name 'Pravachan Parijata' in Hindi. The

lucid presentation and interpretation of the subject matter rendered the book so popular amongst inquisitive readers that several editions of it have been brought out since then. With the object to benefit the English speaking world also with the contents of the discourses of Acharyashri Sri S. L. Jain of Bhopal undertook the task of its translation under the guidance of Muni Kshamasagarji and Muni Abhayasagarji and named it "Preaching Salvation".

The book with the title cover having a befitting picture view of Mansarovar, the salvation site of Lord Rishabhdeva, is divided into seven chapters. While the first one deals with the Jeeva and Ajeeva Tattvas and the last one with the doctrine of Anekant, the rest are devoted to other five Tattvas, i.e., Asrava, Bandha, Samvara, Nirjara and Moksha. Suitable illustrations at the beginning of each chapter, the chart of Roman Transliteration of Devanagri script and the life sketch of Acharyashri have added to its utility. For bringing out this useful edition both Sri S. L. Jain and the publisher deserve congratulations.

प्रवचनसार भाषाकवित्तः रचनाकार पं. देवीदास; सम्पादन-अनुवाद डॉ. श्रीयांशकुमार सिंघई; प्र. भारतीय श्रुति दर्शन केन्द्र, १५, नवजीवन उपवन, मोती डूंगरी रोड, जयपुर-३०२००४; प्र.सं. २००६; पृ. ४१६; मूल्य रु. ५०/-

प्रमाण और प्रमेय व्यवस्था का प्रतिपादक तथा जिनेन्द्र भगवान के प्रवचनों के सारस्वरूप प्राकृत भाषा में निबद्ध चरणानुयोग का ग्रन्थ **प्रवचनसार** आचार्य कुन्दकुन्द (प्रथम शती ईस्वी) की एक महत्वपूर्ण कृति है। उस पर कालान्तर में आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने **तत्त्वप्रदीपिका** और आचार्य जयसेन ने **तात्पर्यवृत्ति** नामक टीकाएं संस्कृत में रची थीं। तदनन्तर पाण्डे हेमराज ने हिन्दी भाषा में **बालबोधनी टीका** रची। उस **बालबोधिनी टीका** में निहित मक्खन से घृत निकालने के समान भगवत्भक्ति में लीन पंडित देवीदास, जो ओरछा के ग्रामदुगौडा के रहने वाले और गोलालारे खरौया वंश के श्रावक संतोषमणि जैनी के सुपुत्र थे, ने अपने स्वाध्यायी मित्रों की प्रेरणा पर **बनारसी विलास** की रचना से अनुप्राणित हो विक्रम संवत् १८२४ (१७६७ ई.) की श्रावण शुक्ल अष्टमी, सोमवार, को **प्रवचनसार भाषाकवित्त** ग्रन्थ पूर्ण किया था। इस ग्रन्थ में मूल ग्रन्थ और उनकी टीकाओं का हार्द तत्कालीन बुन्देली मिश्रित हिन्दी में पद्य में निबद्ध है। इस अप्रकाशित ग्रन्थ की तीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियां जयपुर, बीना और चन्देरी में उपलब्ध थीं। उनके आधार पर ढाई सौ वर्ष प्राचीन भाषा में निबद्ध कृति को आधुनिक युग के अनुरूप सुबोध बनाने की दृष्टि से विद्वद्वर डॉ. श्रीयांशकुमार सिंघई ने इसका कुशल सम्पादन एवं सटीक अनुवाद

कर इसे वर्तमान स्वरूप प्रदान किया और श्री हरीशचन्द्र ठोलिया ने इसका सुचारू प्रकाशन कर इसे जनसामान्य को सुलभ कराया एतदर्थ ये दोनों महानुभाव साधुवाद के पात्र हैं। इस ग्रन्थ का लोकार्पण इस वर्ष २४ जनवरी को उपराष्ट्रपति महामहिम श्री भैरोसिंह शेखावत द्वारा किया गया था।

अहिंसा और विश्वशांति : ले. डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन एवं डॉ. शशि प्रभा जैन; प्र. मेघ प्रकाशन, २३६ गली कुंजस, दरीबाकलां, चांदनी चौक, दिल्ली-११०००६; प्र. सं. २००७; पृ. ८०; मूल्य रु. ५०/-

लेखक द्वय द्वारा प्रणीत यह पुस्तिका अहिंसा का स्वरूप, जैन दर्शन का प्राण-अनेकान्त, श्रमण संस्कृति, राष्ट्रीय चरित्र, आज के विश्व की प्रतिबद्धता, अहिंसा पर आज तक चार महान प्रयोग, आतंकवाद और अहिंसा, मांसाहार धार्मिक कट्टरता और विस्तारवाद, सर्वधर्म समन्वय मंच और अहिंसा तथा समग्र मूल्यांकन नामक दस अध्यायों में समाहित है। प्रायः छोटे-छोटे निबंधों में अनुस्यूत लेखकों के ज्ञान, अनुभव और चिन्तन की त्रिवेणी इस कृति में इस विश्वास और आशा के साथ प्रवाहित हैं कि जीवमात्र का मूल स्वभाव शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व में रहना है अतः चाहे कैसी भी परिस्थितियां हों यदि मानव चाहे तो अहिंसा और अनेकान्त के माध्यम से अपने और औरों के जीवन को संवार सकता है तथा विश्व शांति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। पुस्तक पं. दुर्गा प्रसाद शुक्ल की भूमिका से मण्डित है। अच्छा होता कि पुस्तक में लेखक द्वय का परिचय भी समाहित रहता।

जैन धर्म-एक झलक : ले. डॉ. अनेकान्त कुमार जैन; प्र. आचार्य शान्तिसागर 'छाणी' स्मृति ग्रन्थमाला, बुढ़ाना (मुजफ्फरनगर); प्र. सं. २००७; पृ. ५५; मूल्य रु. १०/-

विगत तीन वर्षों में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित जैन धर्म-दर्शन सम्बन्धी अपने आलेखों पर जैनेतर पाठकों से प्राप्त सकारात्मक प्रतिक्रिया से प्रोत्साहित होकर विद्वान युवा लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन किया है। सरल भाषा शैली में १५ प्रकरणों के माध्यम से जैन धर्म के मर्म को संक्षेप में समझाने का प्रयास इस पुस्तक में किया गया है। पुस्तक जैन एवं जैनेतर सभी पाठकों को जैन धर्म का परिचय कराने में सहायक होगी।

उपर्युक्त के अतिरिक्त निम्नलिखित साहित्य की प्राप्ति साभार स्वीकार की जाती है -

१. **सत्यमेव जयते** : ले. डॉ. राजेन्द्र कुमार जैन बंसल; प्र. श्री महावीर उदासीन आश्रम, कुण्डलपुर (जिला-दमोह) म.प्र.; प्र.सं. २००७; पृ. २४

२. **निजध्रुवशुद्धात्मानुभव** (प्रत्यक्ष प्रामाण्यसहित): संकलनकर्ता अध्यात्मयोगी स्व. श्री वीरसागरजी महाराज; प्र. संपादिका धर्ममंगल, १ सलिल अपार्टमेन्ट, ५७, सानेवाडी, औंध, पुणे-४११००७; ५वीं आवृत्ति २००७; पृ. ६०

३. **शिवशाला मन्थन** (उपाध्याय गुप्तिसागर म. की काव्यकृति 'शिवशाला' पर जून १९९७ में आयोजित संगोष्ठी का विवरण) : सम्पादन सिद्धान्तरत्न ब्र. सुमन शास्त्री एवं डॉ. (श्रीमती) नीलम जैन; प्र. श्री दिगम्बर जैन सर्वोदय तीर्थ पलवल; द्वि.सं. २००६; पृ. १४५; मूल्य रु. ६२/-

४. **आचार्य श्री कनकनंदी के प्रश्नों पर प्रतिप्रश्नोत्तर** : ले./प्र. श्री पवन कुमार जैन, सम्पादक लोक अभिव्यक्ति स्वर, जवाहर मार्ग, सनावद (म.प्र.); पृ. ५६; मूल्य रु. २०/-

५. **जैन श्रीरामकथा** : रचयिता पं. गुणभद्र जैन कविरत्न; प्रस्तुति श्री रमेशचद्र गुणभद्र जैन; प्र. श्रीमती सुधा देवेन्द्र जैन, सन्मति ट्रस्ट, २१-बी, कहान नगर, एन. सी. केलकर रोड, दादर (प.), मुम्बई-४०० ०२८; द्वि.सं. २००७; पृ. २८८; मूल्य रु. ८०/-

६. **प्रेरणा** : श्रुत संवर्द्धन ज्ञान संस्कार शिक्षण शिविर स्मारिका; प्र. सं. डॉ. शीतलचन्द जैन तथा सम्पादक-संयोजक पं. सुनील 'संचय' शास्त्री; प्र. श्रुत संवर्द्धन संस्थान, प्रथम तल, २४७ दिल्ली रोड, मेरठ-२५० ००२; पृ. १०४

७ **जीवन दर्पण** : ले. व संकलनकर्ता श्री केवलचन्द जैन; प्र. शा. लालचन्द मदनराज एण्ड कं., ७/२८, एम.पी.लेन, चिकपेट, बेंगलौर- ५३; पृ.३२६ व चित्र; मूल्य रु.८०/-

मेघ प्रकाशन, २३८, दरीबाकलां, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं प्राप्त कृतियां :

आपका हाथ आपका सच्चा मित्र : ले. पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल; प्र.सं. २०००; पृ. २७६; मूल्य रु. १२५/-

Secrets of Face Reading: by Dr. S. S. Lishk; ed. 2001; pp. 39 with 32 figures; price Rs. 20/-

ग्रहों का कामभाव पर प्रभाव : ले. पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल; प्र.सं. २००२; पृ. १९१; मूल्य रु. ६५/-

रत्न-प्रश्नोत्तरी: ले. पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल; प्र.सं. २००३; पृ. १८१; मूल्य रु. १५०/-

ग्रह शांति दीपिका : संकलन-संपादन आचार्य अशोक सहजानन्द; प्र.सं. २००४; पृ. २०६; मूल्य रु. २००/-

– रमाकान्त जैन

समाचार विमर्श

श्री पद्मावती माता को २००७ फुट की चुनरी

कृष्णगिरि तीर्थ के तीर्थाधिपति श्री बसन्त गुरुजी के सान्निध्य में चेन्नई में तैयार की गई आकर्षक चुनरी ३० अप्रैल को श्री कृष्णगिरि तीर्थ में माता पद्मावती को चढ़ाकर दिनांक १ मई, २००७ को तेयनम पेठ चेन्नई में सभी भक्तों के दर्शनार्थ प्रदर्शित की जायेगी। आज तक किसी भी देवी माता को इतनी बड़ी चुनरी अर्पण नहीं की गई है। इस अद्वितीय चुनरी का विश्व रिकार्ड कायम होगा जिसको लिम्का बुक तथा गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड वाले अपने रिकार्ड में शामिल करने हेतु चेन्नई पधार रहे हैं।

– श्वेताम्बर जैन (साप्ता. आगरा) १६ अप्रैल, २००७

ऐसा प्रतीत होता है कि अब धर्म का उद्देश्य आचरण में सुधार करना नहीं है, अपितु धर्म ऐसे प्रदर्शनों में ही सिमटता जा रहा है। एक मध्यकालीन ग्रन्थ में यह उल्लेख आया है कि जैन साधुओं में श्वेताम्बर, पीताम्बर, नीलाम्बर और रक्ताम्बर साधु होते हैं। श्वेताम्बर और पीताम्बर साधुओं की बात तो हमें विदित थी, किन्तु दूरदर्शन पर हुए प्रसारण से ज्ञात हुआ कि कृष्णगिरि के उपर्युक्त गुरु जी रक्ताम्बर साधु हैं।

एच. डी. कुमारस्वामी पर बरसे मुनि तरुणसागर

हुबली– क्रांतिकारी राष्ट्रसंत मुनि तरुणसागरजी ने कहा कि कर्नाटक के मुख्यमंत्री एच. डी.कुमार स्वामी जैन समाज के प्रति अपनी सोच बदलें। उन्हें मुख्यमंत्री की हैसियत से बुलाया जाता है तो जरूर आना चाहिए। पिछले दिनों यहां संवाददाताओं से बातचीत में उन्होंने कहा कि बंगलौर में उनके चातुर्मास के दौरान कुमार स्वामी को कई कार्यक्रमों में आमन्त्रित किया गया, लेकिन वे नहीं आए। जैन समाज के प्रति मुख्यमंत्री की यह उपेक्षा शोभा नहीं देती।

– अहिंसा-महाकुंभ (मासिक फरीदाबाद), जुलाई २००७, पृ. १६

वीतरागी कहे जाने वाले संत मुनि अब मुख्यमंत्री आदि राजनेताओं के उनके कार्यक्रमों में न पधारने से क्षुब्ध होने लगे हैं। वीतरागता की यह नई परिभाषा वे हमें प्रदान कर रहे हैं। हम तो अब तक यही समझते रहे हैं कि आस्था व्यक्तिगत बात है और किसी सन्त को उसकी सभा या कार्यक्रम में कौन आया और कौन नहीं आया, इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता। **– रमा कान्त जैन**

समाचार विविधा

वैशाली में विद्वद् संगोष्ठी

३१ मार्च, २००७ ई. को प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान, बासोकुण्ड, वैशाली, में **'सामाजिक जीवन में अहिंसा का महत्व'** विषयक 'श्री जगदीशचन्द्र माथुर स्मृति व्याख्यानमाला' बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, के कुलपति डॉ. अशेश्वर यादव की अध्यक्षता में आयोजित हुई। भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्री डॉ. रघुवंश प्रसाद सिंह ने उसका उद्घाटन किया। मुख्य अतिथि भा. दिग. जैन महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार सेठी थे। विषय का प्रवर्तन करते हुए संस्थान के निदेशक डॉ. ऋषभ कुमार जैन ने समाज में अहिंसा की उपयोगिता पर प्रकाश डाला। मुख्य वक्ता दर्शनशास्त्र के विद्वान श्री एस. एन. चौधरी ने विषय को और गति प्रदान की। अन्य वक्ता, जिन्होंने इस संगोष्ठी में सहभागिता की, के नाम हैं- डॉ. श्री रंजन सूरिदेव (पटना), संस्थान के पूर्व निदेशक डॉ. डी. एन. शर्मा, डॉ. आर. के. सिंह, डॉ. सी. पी. सिन्हा, डॉ. शैल कुमारी सिन्हा, श्री चन्द्र किशोर पाराशर तथा पूर्व विधायक श्री योगेन्द्र प्रसाद साहू।

आचार्य हेमचन्द्र सूरि व्याख्यानमाला-तृतीय कड़ी

१३ मई को भोगीलाल लहेरचन्द भारतीय संस्कृति संस्थान, दिल्ली, में प्राकृत भाषा के अध्ययन हेतु तीन सप्ताह तक चलने वाले ग्रीष्मकालीन विद्यालय का उद्घाटन हुआ जिसमें १० राज्यों से आये ३६ छात्र-छात्राओं ने प्रवेश लिया। मुख्य अतिथि डॉ. सुधा गोपालकृष्णन् ने संस्थान के पाठ्यक्रम की प्रशंसा करते हुए अध्ययनार्थ आये छात्र-छात्राओं का प्राकृत भाषा एवं साहित्य को सुरक्षित रखने हेतु आह्वान किया।

इस अवसर पर आचार्य हेमचन्द्र सूरि स्मृति व्याख्यानमाला की तृतीय कड़ी का भी शुभारम्भ हुआ। मुख्य वक्ता डॉ. दयानन्द भार्गव ने अनेकान्त की नई रीति से विशद व्याख्या प्रस्तुत की। डॉ. जितेन्द्र बी. शाह ने कहा कि प्राकृत भाषा में भारतीय संस्कृति छिपी हुई है। बिना प्राकृत जाने भारतीय संस्कृति का सम्यक् दर्शन नहीं हो सकता।

समाज के अग्रणी तथा विद्वानों की उपस्थिति में सम्पन्न इस कार्यक्रम का संचालन संस्थान के कार्यकारी निदेशक डॉ. बालाजी गणोरकर ने किया और धन्यवाद ज्ञापन पूर्व निदेशक डॉ. जयपाल विद्यालंकार ने किया।

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन स्मृति-गोष्ठी

११ जून को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की १६वीं पुण्यतिथि पर उनका पुनीत स्मरण करने हेतु नगर के लब्धप्रतिष्ठ वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. परमानन्द जड़िया की अध्यक्षता में स्मृति-गोष्ठी आयोजित हुई। राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, लखनऊ में रीडर डॉ. विजय कुमार जैन मुख्य अतिथि रहे। संचालन श्री रमा कान्त जैन ने किया।

श्रद्धेय डॉक्टर साहब तथा वाग्देवी सरस्वती के चित्रों पर माल्यार्पण एवं दीप-प्रज्ज्वलन किया गया। तदनन्तर श्रीमती मंजरी जैन, श्रीमती सीमा जैन, डॉ. अलका अग्रवाल, श्रीमती शेफाली मित्तल और डॉ. राका जैन द्वारा डॉक्टर साहब द्वारा रचित 'वीतराग स्वरूपम्' और 'जयमहावीर नमो' के समवेत गायन तथा श्री घनानन्द पाण्डेय 'मेघ' द्वारा वाणी-वन्दना के साथ कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। डॉ. शशि कान्त ने डॉक्टर साहब को अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए इतिहास के प्रति उनकी दृष्टि पर प्रकाश डाला। सर्वश्री लूणकरण नाहर, धनेन्द्र कुमार जैन, विष्णुदत्त शर्मा, सर्वजीत मिश्र, राजीव कान्त जैन, घनानन्द पाण्डेय 'मेघ', डॉ. शैलेन्द्र शुक्ल, मधुकर अष्ठाना, शिवभजन कमलेश, रमा कान्त, डॉ. विजयकुमार जैन और डॉ. परमानन्द जड़िया ने भी डॉक्टर साहब को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। श्री लूणकरण नाहर ने एक आध्यात्मिक भजन प्रस्तुत किया। डॉ. राका जैन और श्री सर्वजीत मिश्र ने मानवता सम्बन्धी रचनाएं, इंजी. राजीव कान्त ने प्रदूषण पर चिन्तनप्रद रचना तथा सर्वश्री घनानन्द पाण्डेय 'मेघ', मधुकर अष्ठाना, शिव भजन कमलेश और डॉ. शैलेन्द्र शुक्ल ने अपने सरस गीतों से वातावरण को रससिक्त किया। अनुभूति, अरूषा, आकांक्षा, संचिता, तन्वी और विभव की बालमण्डली ने नये भारत के परिदृश्य को अपना स्वर प्रदान कर श्रोताओं को मनमुग्ध किया। अध्यक्षीय सम्बोधन एवं काव्य-पाठ तथा ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट के सचिव रमा कान्त जैन द्वारा आभार अभिव्यक्ति के साथ कार्यक्रम पूर्ण हुआ।

ग्रन्थ लोकार्पण

८ जुलाई को अमृतसर में डॉ. साध्वी विजयश्री 'आर्या' द्वारा प्रणीत ग्रन्थ **"जैन श्रमणियों का वृहद् इतिहास"** का लोकार्पण प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर, के निदेशक डॉ. सागरमल जैन द्वारा किया गया। दिगम्बर, श्वेताम्बर, मूर्तिपूजक, स्थानकवासी तथा तेरापंथ परम्परा की प्रायः सभी गच्छों की लगभग दस हजार श्रमणियों का उपलब्ध विवरण क्रमबद्ध दृष्टि से प्रस्तुत करने वाले इस शोध-ग्रन्थ पर जैन विश्वभारती लाडनूं ने साध्वी जी को पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की है और श्री सुमन मुनि महाराज ने उन्हें **"जैन इतिहास चंद्रिका"** विरुद से सम्मानित किया है।

श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, मंगलवार, १६ जून, २००७ ई. को प्रातःकाल तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के चारबाग, लखनऊ, स्थित शोध पुस्तकालय में श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में **षट्खण्डागम** शास्त्र ग्रन्थों और वाग्देवी-श्रुतदेवी-सरस्वती के चित्र को प्रतिष्ठित कर मंगलाचरण स्वरूप जिनवाणी-वन्दना और सरस्वती पूजन तथा श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। कार्यक्रम का संचालन महामंत्री श्री रमा कान्त जैन ने किया। सर्वप्रथम इस पर्व के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डालने हेतु **शोधादर्श**-४४ (जुलाई २००१ ई.) में प्रकाशित श्रद्धेय अजित प्रसाद जैन जी के आलेख ''जयति श्रुत देवता'' का वाचन हुआ और बतलाया गया कि अब से ३१ वर्ष पूर्व सन् १९७६ ई. में इस दिन इस शोध पुस्तकालय की स्थापना हुई थी। तदनन्तर श्री प्रकाश चन्द्र 'दास', डॉ. शशि कान्त, श्री भगवान भरोसे जैन, श्री दिनेश चन्द्र जैन, और श्री आदित्य जैन ने इस पर्व के सम्बन्ध में अन्य विविध जानकारी प्रस्तुत की और अपने विचार व्यक्त किये। श्री भगवान भरोसे जैन ने भजन 'चाह है मुझे दर्शन की, वीर के चरण स्पर्शन की' तथा श्री लूणकरण नाहर जैन ने भजन 'महावीर जी मेरे अन्दर अंधेरा, कर दो चांदना, मेरे अन्दर अंधेरा' सुनाकर वातावरण को रससिक्त किया। अन्त में समवेत स्वर में जिनवाणी स्तुति के साथ कार्यक्रम पूर्ण हुआ। प्रभावना वितरण का पुण्यलाभ श्री लूणकरण नाहर जैन ने लिया।

विशेष डाक लिफाफा

विगत दिनों भारतीय डाक तार विभाग ने जैन समाज को गौरवान्वित करने वाले, स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी, भारत संघ के निर्माण में रियासतों के विलीनीकरण में योगदान करने वाले, अहिंसा और सद्भाव को समर्पित जोधपुर निवासी **श्री दशरथ मल सिंघवी** की जन्म शताब्दी पर विशेष लिफाफा जारी किया।

दिगम्बर जैन मन्दिरों की डायरेक्टरी

महावीर ट्रस्ट, ६३, एम.जी.रोड, इन्दौर-१ के श्री बाहुबली पांड्या समस्त भारत के दिगम्बर जैन मन्दिरों का पूर्ण विवरण-नाम, मोहल्ला/कालोनी, गाँव/शहर, जिला राज्य, पिनकोड और फोन नं. तथा उनके २००७ में कार्यरत अध्यक्ष और मंत्री आदि के नाम, निवास पता और फोन नं. की सूचना संकलित कर प्रकाशित कर रहे हैं। जिन मन्दिरों का विवरण जाने से रह गया हो, वह अविलम्ब उन्हें भेज देवें।

श्री अजित प्रसाद जैन की द्वितीय पुण्यतिथि

२५ जून, २००७ ई. को लखनऊ में निर्भीक पत्रकार एवं समाजसेवी स्व. श्री अजित प्रसाद जैन की द्वितीय पुण्य तिथि मनाई गई। वह **'शोधादर्श'** (लखनऊ) और **'समन्वय वाणी'** (जयपुर) पत्रिकाओं के प्रधान सम्पादक तथा तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के संस्थापक-महामंत्री रहे थें। **जैन गज़ट** साप्ताहिक (लखनऊ) की प्रकाशन व्यवस्था से भी कुछ समय तक जुड़े रहे थे। अपने जीवनकाल में अनेक स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर की धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं से वह सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे थे। एक धर्मनिष्ठ सुश्रावक के रूप में उनकी ख्याति थी।

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में सम्पन्न तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., की साधारण सभा की बैठक में श्रद्धेय अजित प्रसाद जी के चित्र पर माल्यार्पण कर उनका पुण्य स्मरण किया गया। सर्वप्रथम श्री नलिन कान्त जैन ने उनके जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर विशद प्रकाश डाला। तदनन्तर सर्वश्री रोहित कुमार जैन, राकेश कुमार जैन, अंशु जैन 'अमर', धनेन्द्र कुमार जैन, डॉ. शशि कान्त, श्रीं लूणकरण नाहर जैन और रमा कान्त जैन ने उनके प्रति अपने भावभीने संस्मरणात्मक उद्गार व्यक्त किये। श्री अंशु जैन 'अमर' ने जहां उनके द्वारा अपनी निर्भीक टिप्पणियों से **'शोधादर्श'** को पैनापन प्रदान करने की बात कही, वहीं श्री धनेन्द्र कुमार जैन ने समाज के इस सजग प्रहरी द्वारा मुनि श्री सौरभसागरजी के समक्ष मंगल श्लोक में 'मंगलं पुष्पदन्ताद्यो' के प्रयोग पर की गई आपत्ति का सुपरिणाम यह बताया कि आचार्य पुष्पदन्तसागरजी के शिष्यों ने अब यह प्रयोग बन्द कर दिया है। डॉ. शशि कान्त ने उनके दिवंगत हो जाने से स्वतन्त्र विचार चिन्तन में अपना सहभागी खो जाने का दुख व्यक्त किया। श्री लूणकरण नाहर जैन ने अपने भजनों- "ओ प्यारे परदेसी पंछी जिस दिन तू उड़ जायेगा, तेरा प्यारा पिंजरा पीछे यहां जलाया जायेगा" तथा "महलों में नहीं, कुटिया में नहीं, जहाँ याद करो, भगवान वहीं" द्वारा वातावरण को रससिक्त किया।

श्रद्धेय अजित प्रसाद जी के आवास पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ में भी उनके चित्र पर माल्यार्पण तथा सवा घंटे के णमोकार महामंत्र के सामूहिक पाठ के साथ उनका पुण्य स्मरण किया गया।

अभिनन्दन

छतरपुर निवासी **श्रीमती कल्पना जैन** को उनके शोध-प्रबन्ध **"जैन दर्शन एवं योग दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन"** पर रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

सिवनी निवासी **शाह जी नितेश जैन** को उनके शोध-प्रबन्ध **"जैन धर्म ग्रन्थों में वर्णित अध्यात्म कवि द्यानतराय के साहित्य में प्रतिबिम्बित अध्यात्म चेतना रहा"** पर राजस्थान विश्ववविद्यालय, जयपुर ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

श्री उत्तम सिंह को उनके शोध-प्रबन्ध **"आचार्य धर्मकीर्तिकृत प्रमाणवार्तिक आचार्य विद्यानन्द कृत प्रमाणपरीक्षयोः तुलनात्मकम् अध्ययनम्"** पर राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, ने विद्यावारिधि उपाधि प्रदान की।

श्री नेमिनाथ बालीकाई (शास्त्री) को उनके शोध-प्रबन्ध **"आचार्य कुन्दकुन्द विरचित प्रवचनसारस्य विचेनात्मकमध्यनम्"** पर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, ने विद्यावारिधि उपाधि प्रदान की।

श्री राकेश कुमार जैन को उनके शोध-प्रबन्ध **"आचार्य ज्ञानसागर विरचित वीरोदय महाकाव्यस्य दार्शनिकमनुशीलनम्"** पर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, ने विद्यावारिधि उपाधि प्रदान की।

श्रीमती निधि आशीष जैन को उनके शोध-प्रबन्ध **"आचार्य विद्यासागर के मूकमाटी महाकाव्य का अनुशीलन"** पर डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

डॉ. राका जैन, लखनऊ, का भारत सरकार के संस्कृति विभाग द्वारा प्राकृत सूक्ति कोश निर्माण हेतु दो वर्ष के लिये सीनियर फेलोशिप के लिये चयन किया गया है।

३ अप्रैल, २००७ ई. को श्री महावीर जी में **डॉ. अशोक जैन** को उनकी कृति **"जैन दर्शन में अनेकान्तवादः एक परिशीलन"** पर महावीर पुरस्कार वर्ष २००६, **डॉ. अल्पना जैन** को उनकी कृति **"जैन वास्तुस्वातंत्रयवाद"** पर **ब्र. पूरणचन्द्र रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार वर्ष २००६** और **श्रीमती स्नेहलता जैन** को उनकी कृति **"जीव कवि विरचित हरिषेणचरिउ"** (समीक्षात्मक प्रस्तावना व हिन्दी अनुवाद सहित) पर तथा **श्री योगेन्द्र नाथ अरुण** को उनकी कृति **"जैन रामकाव्य परम्परा**

और महाकवि स्वयंभूदेव प्रणीत पउमचरिउ" पर वर्ष २००६ का **स्वयंभू पुरस्कार** प्रदान किया गया।

२१ मई को नई दिल्ली में जैन विद्या मनीषी **डॉ. प्रेमसुमन जैन**, उदयपुर, को पालि-प्राकृत साहित्य में निपुणता तथा शास्त्र में पाण्डित्य के लिये **राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित** किया गया।

डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत, को उनकी गहन सैद्धान्तिक तत्त्व व्याख्या हेतु **'गणिनी प्रमुख आर्यिका ज्ञानमती दीक्षा स्वर्ण जयन्ती पुरस्कार'** से सम्मानित किया गया।

इस वर्ष सम्पन्न उत्तर प्रदेश विधानसभा के निर्वाचन में **श्री प्रदीप जैन 'आदित्य'** (कांग्रेस) झांसी से अपने निकटतम प्रतिद्वन्द्वी को ३३,७७६ मतों से पराजित कर एकमात्र जैन विधायक निर्वाचित हुए हैं।

भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस.) परीक्षा २००६ के १४ मई को घोषित परिणामों में सफल अभ्यार्थियों की सूची में अम्बाला छावनी की **कु. रुचिका जैन,** इम्फाल के **डॉ. मुकेश जैन, राजीव जैन, वैभव जैन, अमित जैन** और **विवेक जैन** के नाम सम्मिलित हैं।

मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग परीक्षा २००३ के २४ मई को घोषित परिणामों में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थान के १७ छात्र चयनित हुए जिनके नाम हैं- **कु. लीना पंकज** (नायब तहसीलदार), **सुधीर जैन, आलोक जैन, अतुल कुमार जैन, कु. प्राचीन जैन, संजय जैन** और **कु. निधि जैन** (सहकारिता निरीक्षण), **नीलेश जैन और जिनेन्द्र जैन** (डिप्टी जेलर), **श्रीमती अरुणा सचान, सतीश जैन, रवीन्द्र जैन और संजय जैन** (आबकारी निरीक्षक), **अनुराग जैन और श्रीमती आभा जैन** (वाणि कर अधिकारी), **सुमत जैन** (संयोजक, आदिम जाति कल्याण विभाग) तथा **राजेश जैन** (कमांडेन्ट)।

करुणा इन्टरनेशनल, चेन्नै, की सदस्या **डॉ. प्रतिभा जैन** और **श्रीमती जिज्ञासा गिरी** की प्रित्या पार्टनर्स (भारत) द्वारा प्रकाशित "Cooking at Home with Pedhata" को चीन में आयोजित गौरमांड वर्ल्ड कुकबुक अवॉर्ड्स २००६ में विश्व की सर्वोत्तम शाकाहारी व्यंजन पुस्तक घोषित किया गया है।

डॉ. दामोदर शास्त्री ७ जुलाई से जैन विश्वभारती लाडनूं के जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्म व दर्शन विभाग में प्रोफेसर हो गये।

श्री रमेश जैन (नवभारत टाइम्स, दिल्ली) को पत्रकारिता हेतु **ऋषभांचल पुरस्कार २००७** प्रदान किया गया।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये शोधादर्श परिवार अभिनन्दन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

शोक संवेदन

१४ मार्च, २००७ ई०. को बाकल (जिला-कटनी, म.प्र.) में दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बहोरीबन्द के पूर्व मंत्री ८५ वर्षीय **सिंघई श्री रूपचंद 'नेताजी'** दिवंगत हो गये। वह **शोधादर्श** के सुचिन्तक श्री मोतीलाल 'विजय' के अग्रज थे।

१८ मई को मुम्बई में प्रख्यात श्रावक एवं 'पी.एच. जैन उद्योग समूह' के वरिष्ठतम सदस्य ८३ वर्षीय **श्री बुधमल मोदी** का निधन हो गया।

६ जून को लखनऊ में लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार, अनेक कृतियों के प्रणेता, हँसमुख, सरल स्वभावी ७२ वर्षीय **श्री वीरेन्द्र प्रकाश गुप्त 'अंशुमाली'** नहीं रहे।

शोधादर्श परिवार उपर्युक्त दिवंगत महानुभावों को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शान्ति और सद्‌गति के लिये जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता है तथा शोक संतप्त उनके स्वजनों-परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

आभार

श्री हुकमचन्द्र जैन, ८६, ठठेरवाड़ा, मेरठ शहर, ने अपनी धर्मपत्नी स्व. श्रीमती माया जैन की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को भेंट स्वरूप रु. २००/- प्रदान किये।

श्रीमती इन्दु कान्त जैन, २१, दुली मोहल्ला, फिरोजाबाद, ने अपने श्रद्धेय श्वसुर स्व. श्री मुन्नालाल जी गढ़ी वालों की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को भेंट स्वरूप रु. १०१/- प्रदान किये।

डॉ. शशि कान्त- रमा कान्त जैन, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ, ने अपने पूज्य पिताजी स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को भेंट स्वरूप रु. ५१/- प्रदान किये।

श्री शान्ति लाल जैन बैनाड़ा, बी-१/२०६ प्रोफेसर कालोनी, हरी पर्वत, आगरा, आगामी १४ अक्टूबर को ७५ वर्ष पूर्ण कर रहे हैं। इस उपलक्ष में उन्होंने **शोधादर्श** को रु. २५०/- भेंट किये।

पाठकों के पत्र

श्री ऋषभदेव मन्दिर के चित्ताकर्षक चित्र से विलसित मुखपृष्ठ युक्त **'शोधादर्श'**-६१ अंक आद्योपान्त अवलोकित कर अत्यन्त आनन्दानुभूति हुई। इस स्तरीय और उपादेय अंक के आरंभ में गुरुगुणकीर्तन के अन्तर्गत अपने पुराने परम आत्मीय पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य के प्रभावी व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आपका सारगर्भित आलेख पढ़कर परम प्रसन्नता हुई। उनके अनेक शोध लेख **'सागरिका'** के पुराने अंकों में पढ़ने का सौभाग्य हमें प्रायः प्राप्त होता था। उनकी 'वीरवन्दना' संस्कृत कविता इस अंक का अभिनव श्रृंगार है।

आपके सामयिक सुविचारित सम्पादकीय-'श्री ऋषभ देव मंदिर' के अतिरिक्त 'धन्य कुमार चरित्र के कर्ता- गुणभद्र', 'पुरासम्पदा का संरक्षण', 'Contribution of Jainism to the Art Tradition of India' आदि अनेक स्तरीय और तथ्यात्मक लेख पठनीय लगे। श्री गणेशदत्त सारस्वत की कविता 'जिन्दगी' और आपकी क्षणिकाएं मार्मिक और अच्छी लगीं। समासतः साहित्य-दर्शन की सुदृढ़ व्यापक पृष्ठभूमि पर गागर में सागर भरे **'शोधादर्श'** के स्तरीय इस अंक में आद्योपान्त आपका सम्पादकीय कौशल परिलक्षित हैं।

- डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, अजीतमल (औरैया)

शोधादर्श के अधिकतर लेख एवं सम्पादकीय उच्चकोटि के होते हैं। मैं पुराने अंकों का उपयोग- Reference Book के रूप में करूंगा।

- श्री कपूरचन्द पाटनी, गुवाहाटी

शोधादर्श-६१ अंक मेरे हाथ में है। विविध सामग्री से परिपूर्ण यह अंक अपने नाम के अनुकूल प्रगतिमान है। यद्यपि श्री अजित प्रसाद जी की समसामयिक विषयों पर बेबाक टिप्पणियों की कमी स्वाभाविक ही है तथापि विशेषज्ञ विद्वानों की विभिन्न विषयों पर टिप्पणियां एवं चर्चाएं **शोधादर्श** में रुचि एवं आकर्षण बनाए रखे हैं।

- डॉ. कमलेश जैन, जयपुर

शोधादर्श का ६१वां अंक प्राप्त हुआ। आवरण पृष्ठ पर श्री ऋषभदेव मंदिर (केसरियाजी) का चित्र एवं सम्पादकीय में समग्र विवरण पढ़कर अच्छा लगा। यद्यपि न्यायालयीन निर्णय आने के बाद भ्रमपूर्ण वातावरण वन जाने से तत्समय जो घटना घटी वह विचारणीय है साथ ही देश के जैन समाज के लिए दिशाबोधक भी। यदि उस

क्षेत्र के भील/आदिवासी प्रतिमा की मान्यता करते हैं तो हमें उनके मध्य आस्था को रूपांतरित करने के प्रयास करना चाहिए। जैसा श्री महावीर जी में संभव हुआ है वैसा ही निर्णय केसरियाजी में भी संभव होगा। हमें सम्यक् रूप से कार्यवाही करने का प्रयास करना चाहिए। पत्रिका के शुभारंभ में आपने पं. पन्नालाल साहित्याचार्य जी का विवरण गुरुगुण कीर्तन के अंतर्गत प्रकाशित किया—पढ़कर व्यापक जानकारी मिली। परिचर्चा में 'दिगम्बरत्व पर निरर्थक विवाद' पढ़कर अच्छा नहीं लगा। मैं यहाँ प्रो. रतनचन्द्र जी से प्रत्यक्ष चर्चा भी करूंगा कि हमें ऐसे विषयों पर निरपेक्ष रूप से विचार करना होगा और विसंगतियों से निवृत्ति के सामयिक उपाय खोजने पड़ेंगे। डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया जी की कविता बहुत अच्छी लगी। अपनी स्पष्ट विचार धारा के साथ **शोधादर्श** अपने लक्ष्य की ओर उन्मुख है। **शोधादर्श** निरंतर प्रगतिपथ पर अग्रसर हो-ऐसी मंगलकामना के साथ।

- श्री दामोदर जैन, भोपाल

शोधादर्श ६१ प्राप्त हुआ। **शोधादर्श** वास्तव में आदर्श शोध की पत्रिका है। इस अंक में महामानव महावीर (डॉ. शशि कांत), ऋषभदेव मंदिर (केशरियाजी), साधुचर्या के मंगलमय छह काल (डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल) आदि सभी लेख अत्यंत उपयोगी, ज्ञानवर्धक एवं शिक्षाप्रद हैं।

साहित्य-सत्कार, समाचार-विमर्श, समाचार विविधा, अभिनंदन, शोक संवेदन, आभार आदि संपादक मंडल की जागरूकता एवं श्रमसाधना का प्रतिफल है। अपने नाम के अनुरूप **शोधादर्श** समाज-संस्कृति के संवर्धन में प्रगतिरत है।

- डॉ. ताराचंद जैन बख्शी, जयपुर

शोधादर्श का ६१वां अंक मिला। चुनिंदा कुछ पत्रिकाओं में **शोधादर्श** अग्रणी पंक्ति में अपना स्थान बना सकी है तो उसका कारण पारदर्शी सम्पादक मण्डल का दृष्टिकोण, चाटुकारिता रहित सम्पादकीय, शोधपूर्ण-ज्ञानवर्द्धक आलेखों का प्रकाशन है।

इस अंक में केसरिया जी मंदिर का पूर्ण इतिहास भी पाठकों को पढ़ने को मिला। 'दिगम्बरत्व पर निरर्थक विवाद' पर डॉ. शशि कान्त जी ने वस्तुस्थिति का परिचय दिया है। हमें तो अत्यंत खेद है कि इस समय मनीषी गण अपनी प्रतिभा का उपयोग आपसी कलहपूर्ण विवादास्पद विषयों पर ही कर रहे हैं जिससे समाज को हानि ही उठाना पड़ रही है।

पं. पन्नालाल जी का अच्छा परिचय गुरुगुण कीर्तन में किया गया है। पत्रिका के निरंतर विकास की कामना करते हैं।

– ब्र. संदीप सरल, बीना

शोधादर्श– ६१ के गुरुगुण कीर्तन में पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य संबंधी ज्ञान व अनुभव से परिचित हुआ। ऐसे लोगों का स्मरण किया ही जाना चाहिये। सम्पादकीय के अंतर्गत श्री ऋषभदेव मंदिर (केसरियाजी) के संबंध में विस्तृत स्थिति मिली। देवस्थान-पूजास्थल सभी के लिए हितकर होकर धरोहर हैं जिन्हें समाज द्वारा सुरक्षित रखा ही जाना चाहिए। 'भगवती आराधना' में भावना स्वरूप विचार कई नवीन तथ्य सामने रखता है। भावना ही मुख्य होती है। बिना भावना, विश्वास और श्रद्धा सब व्यर्थ है। जीवन में कोई भी विवाद सामूहिक रूप से चर्चा कर सुलझाना ही सर्वोत्तम मार्ग है। निरर्थक विवाद समाधान नहीं। इस दृष्टि से 'दिगम्बरत्व पर विवाद' लेख की समस्या विचरणीय है इसके लिए चिन्तन पर ध्यान जरूरी है।

कविताओं में 'पारदर्शी-कुण्डलियां' एवं 'संयासी माहात्म्य' आकर्षित करती हैं। अजित प्रसाद जैन जैसे व्यक्तियों का स्मरण आवश्यक हो जाता है।

अंक की अन्य सामग्री भी पठनीय है। साहित्य सत्कार व समाचार आदि स्तम्भ अच्छी जानकारी देते हैं। डॉ. शशि कान्त जी के ७५ वर्ष पूर्ण करने पर हार्दिक बधाई !

– श्री मदनमोहन वर्मा, ग्वालियर

शोधादर्श ६१ में गुरुगुण-कीर्तन के अन्तर्गत पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य का जीवन-परिचय अत्यन्त प्रेरक तथा अनुकरणीय है। उनके सम्बन्ध में श्री अनूपचन्द्र न्यायतीर्थ का यह कथन जहाँ सर्वथा सार्थक है, वहीं उनके इन शब्दों में प्रणाम निवेदित करने में सात्विक पुलक की अनुभूति होती है-"जैन दर्शन के ज्ञाता श्रावक संस्कृत धाम ललाम, जाने-माने विद्वज्जन प्रिय, पण्डित पन्नालाल प्रणाम"। महामानव महावीर पर डॉ. शशि कांत का लेख भी इसी कोटि का है। इससे श्रेष्ठ जीवन जीने की स्पृहणीय प्रेरणा प्राप्त होती है। प्रस्तुत अंक के अन्य उल्लेखनीय आलेख हैं—डॉ. जैनमती जैन का 'भगवती आराधना में भावना स्वरूप विचार', श्री अजित प्रसद जैन का 'पुरा सम्पदा का संरक्षण' तथा डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का 'धन्यकुमार चरित्र के कर्ता गुणभद्र'। आपका सम्पादकीय पर्याप्त ज्ञानवर्धक है। श्री ऋषभदेव मंदिर के सम्बन्ध में आपने जो जानकारियां दी हैं वे आपकी शोधदृष्टि तथा गहन अध्ययन का

सुखद परिणाम हैं। तीनों ही परिचर्चाएं सार्थक एवं सारगर्भित हैं। कविताओं में डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया, श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध' तथा डॉ. इन्दरराज वैद की रचनाएं प्रभावी हैं।

कुल मिलाकर प्रस्तुत अंक पर्याप्त स्तरीय तथा संग्रहणीय है। आकर्षक मुखपृष्ठ तथा निर्दोष मुद्रण '**शोधादर्श** की निजी पहचान बन गयी है।

- डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, सीतापुर

शोधादर्श- ६१ प्राप्त हुआ। इसनें समस्त सामग्री ही पठनीय एवं संग्रह योग्य है परन्तु केसरिया पर सम्पादकीय एवं आपके द्वारा 'दिगम्बरत्व पर निरर्थक विवाद' परिचर्चा विशेष रूप से पठनीय हैं, चिन्तन योग्य हैं।

- श्री राजेन्द्र कुमार जैन, मेरठ

आ. भाई रमाकान्त जी द्वारा शिल्पित-सम्पादित **शोधादर्श-**६१ मिला। अनेक लोगों के लेखों ने दृष्टि को रोका और पढ़ने को विवश किया। अच्छे चयन और सम्पादन के लिए साधुवाद !

- श्री सुरेश जैन सरल, जबलपुर

शोधादर्श-६१ मिला। केशरिया जी को सचित्र देखकर सन् ५५ की यादें तरोताजा हो गयीं। **शोधादर्श** की सामग्री किसी संस्तुति की अपेक्षा नहीं रखती। आप सबका प्रयत्न श्लाघनीय है।

- डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया, अलीगढ़

शोधादर्श का ६१वां अंक पढ़कर पत्रकारिता के बेबाकपन/स्पष्टवादी दृष्टिकोण की झलक देखने को मिलती है। यद्यपि रास्ता पथरीला अवश्य है, किन्तु जैन समाज हेतु दिशासूचक है। निरन्तरता एवं पहल से **शोधादर्श** को अग्रिम पंक्ति की पत्र-पत्रिकाओं में शीघ्र स्थान प्राप्त होगा।

जैन साधु की नग्नता विषय पर अनेक लेख प्रकाशित हुये। यदि विश्लेषण किया जाये तो समाज या तो भक्तिवश भगवान् ऋषभदेव से महावीर के पथ का अनुसरण करने वाले आचार्य, उपाध्याय व सभी साधुगण की भक्ति में मगन है जहाँ गुण-दोष का कोई महत्व ही नहीं है तो दूसरा वर्ग २८ मूलगुणों तथा श्रेष्ठता की कसौटी पर परखता हुआ समाज सुधारक के बजाय आत्मा की मुक्ति की और रूपी विचारों की पैरवी करता आ रहा है। ९० प्रतिशत जैन श्रावकों का इनसे कोई सरोकार नहीं है, किन्तु मात्र १० प्रतिशत जैन श्रावक धार्मिक राजनीति की लालसा के नाम एवं पदवी

के लोभ में विभाजन की हवा को तेज कर रहा है। ऐसे १० प्रतिशत लोगों को यदि जैन कठमुल्लाओं की उपाधि से नवाजा जाये तो ऐसा लिखना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। विभाजन से जैन धर्म को फायदा कम, किन्तु मुस्लिम समुदाय के दो भागों शिया और सुन्नी की तरह दो भागों में बंटा होने की पहचान अवश्य स्थापित करा देगा। श्री अंशु जैन 'अमर' के लेख 'दिगम्बरत्व' : एक चिन्तन, पर चिन्तन एवं मनन करना आवश्यक है क्योंकि वे दिन दूर नहीं जब जैन समाज के १० प्रतिशत लोग मुस्लिम कट्टरपंथी समाज की तरह फतवे जारी करते नज़र आयेंगे।

अर्थव्यवस्था के भौगोलिकरण होने पर भी जैन समाज सिर्फ भारत में (विदेशों में बसे जैन परिवारों की स्थिति नगण्य सी है) फैला है जबकि जैन धर्म का प्रचार-प्रसार पूरी दुनिया में ईसाई समाज की भांति होना चाहिये। जरूरत है कि जैन साधु और समाज का प्रतिनिधित्व कर रहे लोग आगे आयें, सीमाओं को पार करें और सम्पूर्ण विश्व को जैन सिद्धान्तों से अवगत करायें।

- श्री परवेश जैन, लखनऊ

शोधादर्श-६१ में प्रकाशित सामग्री पठनीय, ज्ञानवर्धक एवं विचारोत्तेजक है। 'गुरुगुण-कीर्तन' स्तम्भ मुझे विशेष प्रिय है। **'शोधादर्श'** मेरे लिये साहित्यिक के साथ-साथ साहसिक पत्रिका भी है।

-श्री ब्रह्मराज मित्तल, हांसी

शोधादर्श, ६१ सामने है। सम्पादकीय 'श्री ऋषभदेव मंदिर (केसरियाजी) सार रूप में सभी तथ्यों को समेटे हुए है। पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य जी का गुरु समर्पित व्यक्तित्व प्रेरक है। उनकी वीतरागता पोषक साहित्य-साधना नमनी योग्य है।

जीवन का रूपांतरण असत से सत में प्रवृत्ति, भावनाओं से ही होती है। जैनाचार में भावनाओं को बहुत महत्व दिया है। इस दृष्टि से डॉ. जैनमती जैन का आलेख 'भगवती आराधना में भावना का स्वरूप' सामयिक और मार्गदर्शक है।

डॉ. शशि कान्त जी की परिचर्चा 'दिगम्वरत्व पर निरर्थक विवाद' एवं अन्य सम्बन्धित आलेख शीर्षकानुसार अनुभूत हुए।

डॉ. शशि कान्त जी के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में उनका सादर अभिनन्दन! उनकी साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक सेवाओं के लिए आभार और सुखद भविष्य की मंगल कामना है। 'निष्कम्प दीप शिखा' नाम अनुरूप है। उनकी

आत्मा की सद्‌गति एवं शांति के लिए प्रार्थना है। उनसे मेरे भी आत्मीय सम्बन्ध रहे। **शोधादर्श** के अन्य सभी स्तम्भ दिशाबोधक हैं।

- डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

शोधादर्श-६१ में गुरुगुण-कीर्तन में पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य के प्रभावशाली व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हुआ। इस स्तंभ के माध्यम से आप न केवल पुण्य-लाभ करते हैं, अपितु जैन धर्म की महती सेवा भी करते हैं। वास्तुदोष-निवारण के नाम पर प्राचीन जिनालयों की तोड़-फोड़ वस्तुतः पुरा-सम्पदा का विनाश है। इसका सर्वाधिक हानिकारक प्रभाव जैन वास्तु के इतिहास पर पड़ेगा। यह एक प्रकार का अपराध है जो क्षम्य नहीं है। स्व. श्री अजित प्रसाद जैन का **शोधादर्श**-४७ का पुनर्मुद्रित लेख इस प्रकार के ढोंग-भरे वास्तु-परिवर्तन पर करारी चोट करता है। 'जैन धर्म में दिगम्बरत्व' विषय पर प्रभावशाली चर्चा एक बार पुनः प्रकाश में आई। इस विषय में डॉ. शशि कान्त का निवेदन विशेष रूप से महत्वपूर्ण और अनुकरणीय है। जैन धर्म के अस्तित्व की रक्षा के लिए दिगम्बरत्व नहीं, धर्मानुकूल सम्यक् आचरण आवश्यक है। श्री अंशु जैन 'अमर' के अनुसार, "कठोर दुःसह आन्तरिक और बहिरंग तपश्चर्या का पुण्य परिणाम है दिगम्बरत्व, न कि कोई चरणबद्ध कपड़ा-उतारू फैशन शो।" उनके निम्न शब्द भी इस समस्या के समाधान का मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम हैं "जिस किसी संस्था में परिवर्तन और लोच का अभाव होता है, उसमें ह्रास और बिखराव की संभावनाएं जन्म लेने लगती हैं। जल का ठहराव उसे दुर्गंधित बनाता है, जबकि नदी का प्रवाह उसे निर्मल। धर्म के दो पक्ष होते हैं—एक दार्शनिक और दूसरा व्यावहारिक। निःसन्देह दार्शनिक पक्ष में दृढ़ता होनी चाहिए, लेकिन वहीं दूसरी ओर व्यावहारिक पक्ष उतना ही लचीला होना चाहिए जिससे कि वह देश-काल के अनुकूल स्वयं को ढाल सके।" डॉ. गणेशदत्त सारस्वत की कविता 'जिन्दगी' रोचक और प्रभावशालिनी है। बन्धुवर डॉ. शशि कान्त के अमृत महोत्सव का समाचार अत्यन्त सुखद लगा।

इस अंक की शेष सभी रचनाएं एवं स्तंभों की विविध जानकारी भी रुचिकर और ज्ञानवर्द्धक है। ऐसे गुरु-गंभीर और स्तरीय अंक के लिए रचनाकारों तथा सम्पादकों को साधुवाद!

- डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, भिलाई

'शोधादर्श' ५६ में श्री अंशु जैन 'अमर' का एक संस्मरण लेख 'समाज का भविष्य और भविष्य का समाज'' पढ़ा। उन्होंने लखनऊ में सम्पन्न भारत सरकार के भाषायी एवं धार्मिक अल्पसंख्यकों की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक परिस्थिति पर रिपोर्ट तैयार करने हेतु समागत आयोग के सदस्यों के प्रवास कार्यक्रम पर आधारित अनुभवों को लेखबद्ध किया है। समाज के प्रतिनिधि मण्डल द्वारा आयोग के विचार बिन्दुओं (टर्म्स ऑफ रिफरेंस) पर अपेक्षित सुझाव न दे पाने की स्थिति के उपरांत उन्होंने अपनी ओर से विचार मंथन की दृष्टि से जो बिन्दु प्रकाशित किए हैं, वे विचारणीय हैं। मेरे विचार से आयोग द्वारा प्रस्तुत विचार बिन्दुओं पर हमें पुनः व्यापक विमर्श के लिए इन्हें समाज के मध्य प्रस्तुत करना चाहिए ताकि प्रथमतः हम इन सुझावों को सामाजिक संगठनों के माध्यम से लागू करने की दिशा में कार्य कर सकें और प्राप्त परिणामों के आधार पर आवश्यक कार्यवाही के लिए शासन के समक्ष दृढ़तापूर्वक सुझाव प्रस्तुत कर निर्णय करा सकें। यह अनुभव की बात है कि हमारा समाज अभी वैचारिक रूप से उतना समृद्ध नहीं है जितनी अपेक्षा की जा रही है साथ ही यह भी विसंगतिपूर्ण है कि वैचारिक मंच पर भी आर्थिक सम्पन्न लोग ही पहुँचना चाहते हैं। समाज का भविष्य या भविष्य के समाज के लिए भी उनकी नज़र मात्र आर्थिक रूप से साधन-सम्पन्नता तक सीमित रह जाती है, वैचारिक श्रेष्ठता या ज्ञान की सम्पन्नता उनके लिए विचारणीय ही नहीं होती।

आपसे सादर अनुरोध है कि आप कृपया आयोग की ओर से प्रस्तुत विचार बिन्दुओं पर केन्द्रित विमर्श की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने की दृष्टि से इन्हें राष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित करने की योजना बनायें। यदि संभव हो तो एक विचार गोष्ठी/सम्मेलन का आयोजन कर देश में गठित/संचालित विभिन्न संस्थाओं और पत्र-पत्रिकाओं के प्रतिनिधिगणों की सहभागिता से एक संयुक्त सुझाव पत्र/स्थिति पत्र तैयार कराया जा सकता है। विभिन्न ट्रस्टों, फाउण्डेशन, शोध केन्द्र, तीर्थ क्षेत्रों, संघों और पारमार्थिक संस्थाओं को और उनके संसाधनों को योजित कर समाज के वास्तविक कल्याण का एक प्रभावी कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है। यह विचारणीय है कि वर्तमान जैन समाज की परिस्थिति और मनःस्थिति पर शोधपूर्वक प्राप्त आदर्शों के बारे में जानकारी संग्रहीत कर 'भविष्य के जैन समाज' की तैयारी कैसे की जाये, आप इस दिशा में सार्थक पहल कर सकते हैं।

– श्री दामोदर जैन, सदस्य NCERT, भोपाल

आवश्यक सूचना

इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है। मनीआर्डर भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्ट कार्ड पर भी अपने पूरे नाम पते के साथ अवश्य भेजें।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें यथासंभव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। *लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।*

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं की दो *प्रतियां* भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु *शोधादर्श* का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुँचने की सूचना भी देवें।

– सम्पादक